लहर-लहर हर नैया नाचे

(कहानी-संग्रह)

लहर-लहर हर

नैया नाचे

कहानी - संग्रह

ओम प्रकाश गुप्त

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०

रामनगर, नई दिल्ली-५५

‘सुभाष’ को

प्राक्कथन
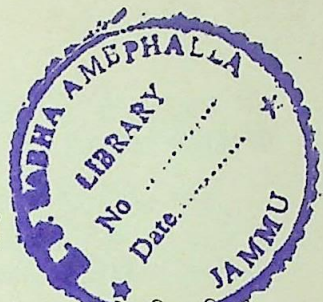
जम्मू जैसे अहिन्दी-भाषी प्रदेश के साहित्यकारों के लिए हिन्दी-साहित्य की साधना काफी कठिन कार्य है। राष्ट्रीय मंच पर वह पहचाना जा सके, इसके लिए उसके पास उचित साधन नहीं हैं। राज्य में कोई अच्छी हिन्दी-पत्रिका प्रकाशित नहीं होती। राज्य की अकादमी अर्द्ध-वार्षिक 'शीराज़ा' का प्रकाशन करती है किन्तु इस पत्रिका में जम्मू के लेखकों को उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता। माँग की जाती रही है कि इस पत्रिका के वर्ष में कम से कम चार अंक प्रकाशित हों। ऐसा होने पर शायद यहाँ के लेखकों की कुछ भलाई हो सके। अकादमी द्वारा पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आंशिक आर्थिक सहायता भी दी जाती है। यद्यपि हिन्दी साहित्यकार अन्य भाषाओं के साहित्यकारों की अपेक्षा इस योजना से कम ही लाभान्वित होते हैं, तथापि इस योजना से साहित्यकारों को लाभ हुआ है इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस दिशा में राज्य-सरकार का भी निश्चित उत्तरदायित्व है। राज्य की ओर से हिन्दी साहित्य की कोई पत्रिका प्रकाशित नहीं होती। फील्ड-सर्वे आर्गेनाइजेशन द्वारा प्रकाशित 'पाक्षिक' डुग्गर समाचार मुख्यतया एक समाचार-पत्रिका है।

राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता कठिन होने तथा हिन्दी साहित्य की सेवा अर्थकरी भी न होने के कारण प्रायः हिन्दी का साहित्यकार प्रादेशिक भाषा की ओर उन्मुख हो जाता है। वहाँ से मान्यता भी मिलती है, थोड़ा-बहुत पैसा भी। हिन्दी के मूर्द्धन्य साहित्यकारों, पत्रकारों और नेताओं को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि अहिन्दी-भाषी राज्यों के हिन्दी-साहित्यकारों को समुचित मार्ग-दर्शन तथा प्रोत्साहन मिल सके। अनेक युवक राष्ट्र-भाषा और उसके साहित्य की सेवा की

ओर उन्मुख होते हैं किन्तु शीघ्र ही रास्ता बदल कर किसी दूसरी पगडंडी पर चल पड़ते हैं।

हिन्दी कहानी मनुष्य के बहुमुखी जीवन की कहानी है। कविता की भाँति वह कभी भी किसी वाद-विशेष से संबद्ध नहीं रही। अनेक आन्दोलन इसे निरन्तर जीवन के निकटतर लाने में सहायक हुए।

इस प्रदेश के कहानीकार जो राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान बना पाए, वे हैं ठाकुर पुंछी तथा वेद राही। ये दोनों साहित्यकार इस प्रदेश के बाहर रह कर ही मान्यता अर्जित कर सके। वेद राही का हिन्दी की नई कहानी के विकास में विशेष स्थान है। वे जम्मू में ही रहते तो शायद उनकी कला उस निखार को प्राप्त नहीं कर पाती। प्रादेशिक कहानीकारों में मनसा राम 'चंचल', ज्योतीश्वर 'पथिक', उषा व्यास, सुतीक्ष्ण कुमार तथा स्वप्न चौधरी के नाम गिनाये जा सकते हैं। 'चंचल' का सम्बन्ध हिन्दी मिलाप, जालन्धर, योजना, श्रीनगर तथा डुग्गर समाचार, जम्मू पत्रिकाओं से रहा। लेकिन यूं लगता है जालन्धर से आ जाने के पश्चात् उनकी कला का विकास रुक-सा गया है। इस ऊबड़-खाबड़ कँटीले मार्ग पर अन्य साहित्यकार कितनी दूर तक चल सकेंगे इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानियाँ 'जग-बीती' हैं या 'आप-बीती' इसका निश्चय मैं आसानी से नहीं कर पाता। इन कथाओं के पात्र मेरे जाने-पहचाने हैं। उन्होंने किसी न किसी रूप में मेरे हृदय की तंत्रियों को झंकृत किया तथा उनके विषय में कुछ कहने को मैंने अपने आप को बाध्य पाया है। कहानीकार एक परिवेष में जीता है इसलिए उसकी लिखी कहानियों का एक सीमित परिवेष स्वाभाविक ही है। एक विद्यार्थी और अध्यापक होने के कारण मेरी कहानियों में प्रायः विद्यालय, अध्यापक तथा छात्र की समस्याएँ स्थान पाती रही हैं। मेरी यह भी इच्छा रही कि हिन्दी कहानियों के माध्यम से इस प्रदेश की बात कही जाए, जिसका प्रतिनिधित्व करने का दावा वे लोग करते हैं

जो हिन्दी को छोड़ कर प्रादेशिक भाषा में साहित्य-रचना करने लगे हैं। 'मोहन राव', 'तारों की छाँह' में भाषा के आंचलिक रूप के उदाहरण भी आपको दिखाई देंगे। 'मिनिस्टर के रिश्तेदार' में इस प्रदेश की लोक-कथाओं का आश्रय भी लिया गया है। इसी कारण यह कहानी रिपोर्ताज़ के अधिक निकट हो गई है।

कहानीकार के मस्तिष्क में उलझे अनेक प्रश्न-चिह्न इन कहानियों के माध्यम से मुक्ति पा सके हैं। यह भी सही है कि इस प्रवाह में मस्तिष्क काफी पीछे छूट गया है, हृदय काफ़ी आगे निकल गया है। किन्तु विज्ञान के इस युग में बौद्धिक चिंतन और हृदय की भावना दोनों का स्थान मस्तिष्क ही माना जाता है।

इसलिए इन कहानियों का कथ्य केवल कथ्य ही है और कुछ नहीं।

१ मार्च, १९७१

—(डा०) ओम प्रकाश गुप्त

क्रम

युग और आग

बूढ़ा सलामदीन आज सो नहीं पा रहा था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसका बिस्तर जल रहा है। अंगारे, दहकते हुए अंगारे; चिंगारियाँ और ऐसी लपटें जो निरन्तर बढ़ती चली जा रही थीं! उसने दीवार से टंगे मानचित्र पर आँखें जमा दीं। पच्चीस वर्ष पुराने भारतवर्ष के मानचित्र के रंग मद्धम पड़ गए थे। कई बार उसके पोतों ने इस मानचित्र की जगह कोई अन्य चित्र लगाने का यत्न किया किन्तु न जाने क्यों, सलामदीन को इस पुराने मानचित्र से बहुत प्यार था। प्रायः दोनों हाथ कमर पर रखकर वह मानचित्र के सामने खड़ा हो जाता और न जाने क्या कुछ खोजता रहता। यह मानचित्र बहुत पुराना था; इसी लिए इसमें पाकिस्तान बनाए प्रदेशों को अलग नहीं दिखाया गया था।

आज उसे ऐसा अनुभव हो रहा था मानो एक जलती हुई लाल रेखा इस प्रदेश को अलग कर रही थी। यह रेखा उस गोली की भाँति थी जो आज उसके सामने से 'धू...' करती निकल गई थी और एक कोने में खड़े नवयुवक के वक्ष में घुस गई थी।

बूढ़े सलामदीन को पच्चीस वर्ष पुराना युग याद आने लगा जब वह गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक था। उसके अनेक

छात्र अब अच्छी-अच्छी पदवियां सम्हाले हुए थे। पर क्या मजाल कि मौलवी जी को देखें और 'सलाम' किए बिना निकल जाएं। हर-एक की स्मृति उसके वृद्ध हृदय में स्नेह का ज्वार उमड़ाने लगी। पल भर के लिए वह उस आग को भूल गया। 'छज्जूराम जो दिल्ली में है, गुरुदत्तसिंह पढ़ने में नालायक पर आज कर्नल है, जलाल-उद्-दीन जो कलकत्ते में प्रोफेसर है'—और वे सभी लोग जो उस प्रदेश में हैं जिसे अब यह जलती रेखा अलग कर रही थी, उसे याद आने लगे। बूढ़े सलामदीन की आँखों से आँसू बहने लगे। आज एक अध्यापक को विद्यार्थियों के हाथों पिटते देखा था सलामदीन ने। अध्यापक ने देर से आने के कारण उसे कक्षा में आने से रोका था। बस इतनी ही बात······या खुदा उस्ताद की यह हालत !

'आग' भड़क उठी। वह खाट पर बैठा न रह सका; छत पर जाकर टहलने लगा। अचानक उसने आकाश की ओर देखा··· उसे लगा जैसे चिंगारियों से भरा है सारा आसमान ! "आज तो सचमुच पगला गया हूँ" माथे पर हाथ मारते हुए उसने कहा। इतने में गोलियों की आवाज़ फिर सुनाई दी—टक-तड़-टक ! भयानक शोर भर गया गली में ! 'गोली चल रही है; यार्ड में खड़ी गाड़ियों को आग लगा दी गई है, छः मर गए हैं।'

सलामदीन सोचने लगा—क्यों न इन छोकरों को रोक दूँ जाकर ? उसकी चालीस वर्ष पुरानी छड़ी हवा में लहराने लगी परन्तु उसे सहसा ध्यान आया—समय बदल चुका है। उसे याद आया कि दिलबाग सिंह कुल्हाड़ा लेकर दाताराम को मारने जा रहा था। गाँव में कौन था, जो उसे रोके? पुलिस भी उससे डरती थी। किन्तु दूर से सलामदीन के तुर्रे को देखकर उसके पैर रुक

गए थे।

सलामदीन को गुस्सा श्राने लगा—'ये उस्ताद हैं? लड़कों को काबू में नहीं रख सकते!' एक शीतल श्राह उसके मुख से निकल पड़ी। वह क्या कर सकता था? गली में भागते लोगों का शोर बढ़ने लगा; वह नीचे श्रा गया। जलते हुए मानचित्र के सामने खड़ा हो गया लेकिन श्राँखें वहाँ न टिक सकीं। कोने में रखा ग्लोब घूमने लगा; दीवारें घूमने लगीं······'नहीं मैं ऐसा नहीं होने दूँगा, मैं इस ग्लोब को रोक दूँगा।' लड़खड़ाते कदम, फैली हुई बाँहें, बूढ़े हाथ ग्लोब की श्रोर बढ़ने लगे। गली से श्रावाज़ श्राई 'जिन्दा पकड़ कर जला देंगे।'

"किसको, क्यों?" बूढ़ा सलामदीन चीख उठा।

पास की खाट पर सोई हुई उसकी पत्नी जाग पड़ी। 'क्या हो गया है श्रापको?'

सलामदीन चकरा कर धड़ाम से फर्श पर गिर पड़ा। 'श्रापको तो बहुत तेज़ बुखार है।' बूढ़ी सकीना ने कहा।

'सभी कुछ जल रहा है पगली श्रौर बूढ़े सलामदीन को बुखार भी न हो?'

'क्या जल रहा है?'

"सभी कुछ," श्रौर बूढ़े ने पागलों की भाँति श्रागे बढ़ कर पुराने मानचित्र को बाँहों में भर लिया। सीने से लगा कर बच्चों की तरह रो पड़ा। १९४७ में मारे गए उसके पुत्र श्रौर पुत्री उसे याद श्राने लगे। उसकी श्राँखों से बहकर श्राँसू मानो श्राग को बुझा रहे हों।

× × ×

पर आग नहीं बुझी। कुछ दिनों के बाद मातम-पुरसी करने वालों ने देखा वह कील जहाँ मौलवी जी का प्रिय मानचित्र टंगा रहता, खाली थी! दिन बीतते चले गए। उस कील के गले में एक नए चित्र का धागा दिखाई देने लगा। चित्र था भड़कीला, नए ढंग का। लेकिन अजीब बात थी—कि पुराना चित्र किसी ने कभी हवा में हिलते नहीं देखा था। किसी महातपस्वी की न्याईं अविचल रहता। परन्तु नए चित्र बदलते रहते और ज़रा-से झोंके से फड़फड़ाने लगते। ऐसा क्यों?

× × ×

हाँ, बूढ़ी सकीना इसका राज़ जानती है क्योंकि जब मौलवी जी आधी रात तक बच्चों को पढ़ाते रहते और नींद से बच्चों की आँखें भारी होने लगतीं तो सकीना गीले रूमाल से उनकी आँखें पोंछ दिया करती थी। अब भी कभी-कभी वही वात्सल्य उसके हृदय में उमड़ा करता है किन्तु वह जानती है—युग बदल गया है, 'आग ही लग गई है इस ज़माने को!'

रात सितारों वाली

शोभा और राजू साथ-साथ खेलते, इकट्ठे पार्क में घूमने जाते, स्कूल का काम भी एक-साथ बैठकर करते। शोभा—सामने वाले मकान में किराएदार श्री भगवान सहाय की इकलौती बेटी थी। राजू शोभा से लगभग तीन वर्ष बड़ा था। हमारे घर में कोई बच्ची न थी इसलिए सहाय तथा उनकी पत्नी से हँसी में कहा करते—'यह बेटी तो हमें दे दीजिए।'

'आपकी ही तो है,' लाला जी कहते; लेकिन उनकी पत्नी नारी-स्वभावानुसार कहती—'दहेज मत माँगिएगा, समाज-सुधार का युग है।' और बात हँसी में विलीन हो जाती।

× × ×

दिन बीतते गए। एक बार श्रीमती सहाय मैके गईं। कुछ सप्ताह उपरांत लौटीं तो घर पहुँचते ही शोभा हमारे यहाँ आई और बोली—'राजू कहाँ है ?'

'कब आई शोभा ?' राजू ने कमरे से निकलते हुए कहा।

'अभी' शोभा ने कहा और एकदम घर को भाग गई मानो कुछ भूल हुई उससे ! मैंने सोचा—राजू के लिए कोई भेंट लाई होगी।

× × ×

भोजन का समय था। हम भोजन करने बैठे ही थे कि शोभा ग्रा गई। वह भी हमारे साथ ही भोजन करने बैठ गई। राजू ने नया सिलवाया लाल कोट पहना था। मैंने कहा 'राजू ! तुम कोट पहने भोजन करने क्यों बैठ गए ? गंदा हो जाएगा !' राजू चुप रहा लेकिन उत्तर उसकी माँ की ग्रोर से ग्राया—'ग्राज तो राजू लाल कोट पहनेगा ही; शोभा को तो लाल कोट ही पसन्द है ! ग्रौर शोभा को नहीं देखते—सितारों वाला फ्राक। ग्रभी बदल के ग्राई है, राजू को जो पसन्द है।' राजू ग्रौर शोभा शायद, हमारी बातें सुन नहीं रहे थे। वे तो हलुए की बन्दर-बाँट कर रहे थे।

× × ×

इन्हीं दिनों की एक ग्रौर घटना मुझे याद है। मेरे एक मित्र दिल्ली में रहते हैं। गर्मी की छुट्टियों में वे सपरिवार हमारे पास ग्राए हुए थे। उनका छोटा बेटा मनोज ग्रौर राजू लगभग एक ग्रायु के थे, ग्रतः दोनों खेल में मग्न रहते। एक दिन पता चला कि मनोज की माँ कुछ रुष्ट थी। राजू की माँ ने मुझे बताया, "बात कुछ भी नहीं। शोभा ने काला फ्राक पहना था—सितारों वाला। मनोज ने उसे कहा : 'इस फ्राक में तो तुम बहुत सुन्दर लगती हो।'

'तुझे इससे क्या ?' शोभा बोली।

'हाँ, तुझे इससे क्या ?' राजू ने दुहराया—तीखी ग्रावाज़ में। मनोज नें इसे ग्रपना ग्रपमान समझा, दोनों में झगड़ा हुग्रा। मनोज की पिटाई भी हुई क्योंकि राजू की सहायता शोभा करती रही थी।"

× × ×

सरकारी नौकरी जीवन में अनेक सम्बन्ध स्थापित करवाती; फिर तुड़वा देती है। लाला भगवानसहाय तब्दील हुए और नागपुर चले गए। कभी-कभी उनका पत्र आता जिसमें पारिवारिक कुशल-क्षेम, इधर-उधर की बातें होतीं। पहले कुछ पत्रों में लिखा जाता रहा—शोभा राजू को याद करती है। फिर धीरे-धीरे शोभा का नाम पत्र से मिट गया। दिन-मास-वर्ष बीत गए और लाला जी लिखने लगे—शोभा के लिए अच्छा-सा वर ढूंढिए। फिर एक निमन्त्रण-पत्र आया—शोभा के विवाह का और मैंने कुछ रुपये धनादेश द्वारा भेजकर कर्त्तव्य निभाया।

उसके बाद उनका कोई पत्र नहीं आया और हम भी उन्हें भूल गए।

× × ×

अचानक दो सप्ताह पूर्व लाला जी का फोन आया। वे यहाँ सपरिवार आए थे। डाक्टर ने किसी ठण्डी जगह जाने की सलाह दी थी। श्रीनगर जा रहे थे। पुरानी यादें ताजा हो उठीं। निश्चय हुआ, उन्हें घर लाया जाए। हम दोनों उनके होटल में पहुँचे। वह अत्यधिक दुर्बल थे। बीस वर्ष पूर्व और अबके दम्पति में बड़ा अन्तर था। उनके साथ एक युवती थी। 'चाचा जी नमस्ते,' उसने कहा और चाय बनाने लगी। 'नमस्ते' कह हमने प्रश्न-सूचक दृष्टि से लाला जी की ओर देखा। वह मौन रहे। उनकी पत्नी बोलीं—शोभा।

'शोभा !' हम चीख पड़े।

'हाँ' लाला जी बोले, 'भाग्य की बात है। सोचा था बेटी का सुख देखकर बुढ़ापा कट जाएगा। किन्तु··· ।'

'पर यह कैसे, क्या हुआ ?'

'गाड़ी का एक्सीडेंट हुआ था। आपने समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा।'

रेलगाड़ियों की अव्यवस्था के फल-स्वरूप जो दुर्घटनाएँ होती रहती हैं, उनका कोई भी चित्र मेरे लिए अधिक मार्मिक नहीं हो सकता था। मेरे नयनों में वही चार-पाँच साल की चुलबुली बच्ची थी।

'विवाह के एक साल बाद ही...' श्रीमती सहाय बोलीं और हमने शोभा की ओर देखा। वह शायद हमें बातें करने का अवसर देने के लिए बरामदे में चली गई थी।

× × ×

हम घर आ गए। नहा-धो कर सभी लोग भोजन की मेज पर बैठे।

'शोभा कहाँ है ?' मैंने पूछा।

'शोभा !' उसकी माँ ने पुकारा।

शोभा आई; मैं उसकी ओर देखता रह गया। वह चुपचाप कुर्सी पर बैठ गई।

'शोभा ! काली साड़ी क्यों पहन रखी है ?' सहसा मेरे मुख से निकला। इससे पूर्व कि प्रश्न की मूर्खता समझ पाऊँ, श्रीमती सहाय बोलीं—'दो ही रंग तो पहन सकती है—सफेद और काला। सफेद साड़ी तो दिन में तीन बार मैली होती है। मेरे पास भी कुछ काली साड़ियाँ पड़ी थीं। काली साड़ी से इसे चिढ़ थी, अब वही पहननी पड़ती है।'

मुझे सितारों वाले काले फ्राक और लाल कोट की याद आई।

न जाने क्यों राजू को भी लाल रंग का कोट पसन्द नहीं है।

मैंने देखा शोभा की माँ के माथे पर बड़ी-सी बेंदी, होंठों पर लिपस्टिक ! और शोभा··· ! वह हमारी बातें सुने बिना धीरे-धीरे भोजन कर रही थी।

× + ×

रात को सोने से पहले लाला जी को दवा पिलाने शोभा आई। वही काली साड़ी··· ।

मुझे फिर याद आई—सितारों वाला काला फ्राक ! राजू ने कान्वेण्ट जाने से इनकार कर दिया था क्योंकि लाल कोट उनकी वर्दी का अंग था। राजू काला फ्राक भूल चुका था और शोभा लाल कोट; मगर मैं सोच रहा था, शोभा की इस काली साड़ी में सितारे भर देने के लिए क्या मैं कुछ नहीं कर सकता ?

× × ×

और आज अनेक विरोधों के पश्चात् इस मकान की दीवारों पर दीपमाला हो रही है; राजू ने, वर्षों के बाद, फिर से लाल कोट पहना है; मेरी आँखों में आँसू हैं; दोनों हाथ जोड़े ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हूँ—ये आँसू शोभा की साड़ी के सितारे और राजू के कोट के फूल बन जाएँ।

× × ×

खिड़की से बाहर झाँकता हूँ—कितनी सुन्दर, शांति-प्रदायक है, यह रात सितारों वाली।

'मैटर्निटी लीव'

आज नीना की स्टेनो ललिता का विवाह है। दिन भर वह स्टेनो की कुर्सी को निहारती रही। आजकल कुंवारी लड़कियाँ भी माथे पर बिंदी लगा लेती हैं। सो ललिता भी फैशन में किसी से कम नहीं थी। पूर्णतया 'माडर्न' बनी रहती थी। "लेकिन विवाह के बाद वह भी माँग में सिंदूर, हाथों में मेंहदी सजाकर आएगी। कुछ महीनों बाद वह मोटा पेट लेकर घूमा करेगी और फिर 'मैटर्निटी लीव' माँगेगी।"

'क्या करूँगी मैं वहाँ जाकर?' उसने निमन्त्रण-पत्र वाला रंगीन लिफाफा रैक में रख दिया। 'पर यह तो एटिकेट है'; उसे जाना ही चाहिए।

× × ×

रिकार्डप्लेयर पर धुनें बज रही थीं। लड़कियाँ नाच रही थीं। कुछ अलग बैठी गा रही थीं—

'क्यों नीमयाँ धर्मी क्यों नीमयाँ,
इस कोठे दा काठ ए पुराना;
कोठा धर्मी ताँ नीमयाँ··· !'

"आपके मन में तो ये धुनें गूंज जाती होंगी।"

"अरे आप ! रमेश जी !"

रमेश नीना का दूर-सम्बन्ध से बहनोई था इसलिए ठठोली करने का उसे अधिकार था।

"ये धुनें आप ही को मुबारक हों", नीना ने मानो बचने की कोशिश की।

"हमें मुबारक हो चुकीं; अब तो ललिता को मुबारक कहिए।"

"हाँ सो तो है ही," उसने कहा।

"अब तो इनकी ही बारी है," ललिता की माँ ने उसका स्वागत करते हुए कहा। लेकिन नीना जानती थी—सभी मन में कहते हैं, इसके साथ अब ब्याह कौन करेगा ? ब्याह की उम्र ही बीत गई है।

× × ×

वहाँ से नीना शीघ्र ही लौट आई थी। सिर में पीड़ा हो रही थी। 'ओह कितना शोर था वहाँ !' उसकी बहन सिनेमा चली गई थी। उसका जी चाय पीने को था, पर बनाए कौन ? वह लेट गई, जल्दी ही उसे नींद आ गई। स्वप्न में पीड़ा और तीव्र हो गई। कोई हथौड़े चला रहा है—उसे ऐसा लगा। उसने बलपूर्वक हथौड़ा पकड़ लिया। पर यह क्या, उसके हाथ में लाल कमल का फूल था। वह जाग पड़ी।

उसे याद आया—कालेज में लड़कियाँ उसके बालों में लाल गुलाब लगा दिया करती थीं। उन दिनों भी वह कहा करती थी—मैं विवाह नहीं करूँगी। उसकी सहेलियाँ कहतीं—यह सब

वाग्जाल है। वे गाने लगतीं······छोटा-सा घूंघट निकाल के, चली दुलहनिया पिया के संग''······''ऊँह! आएं वे सब और देख लें; नीना जो कहती है, वही करती है'' उसने अभिमान से सोचा।

× × ×

''छुट्टी चाहिए? क्यों?''

''जी मैट······!''

'मैर्टनिटी, मैर्टनिटी! और कुछ काम भी है तुमको? जाओ बाबू को दे दो।'

दूसरे ही दिन दफ्तर में निबटने के बाद बाहिर आ रही थी। दीवार की ओट में बातें हो रही थीं—

'खुद जो राँड है! मैर्टनिटी नाम से चिढ़ है उसे। लाल चूड़ा और रोली देखकर तो बौरा जाती है। अपना जो कोई नहीं। ······''

वह अनसुनी करके आगे बढ़ गई। उसे याद आया क्लास का वह दिन जब मनोविज्ञान के प्राध्यापक कह रहे थे—फ्रायड ने लिबिडो—'काम' को कितना महत्त्व दिया है, कुंठा क्या है, क्यों होती है? वह खीझ उठी थी—'कुंठा···कुंठा···कुंठा···फ्रायड को हर जगह कुंठा दिखाई दी; और दिखाई दिया काम! काम के बिना जिया नहीं जा सकता? मैं यह मानने को तैयार नहीं।' अध्यापक ने शांति से कहा था—'आप मानें या न मानें, फ्रायड की मान्यता सही हो या ग़लत, मगर आपकी यह चिढ़ निश्चय ही किसी कुंठा के कारण है।' सभी ठट्ठा लगा कर हँस पड़े थे और वह लजा कर रह गई थी।

'ऊंह, कुंठा ? कौन-सी कुंठा है मुझ में ? कोई भी तो नहीं ।' वह सोचती जा रही थी । फिर उसे याद ग्राया कि कुंठा का पता चल जाए तो फिर वह कुंठा नहीं रह पाती । 'तो क्या मुझे कुंठा का पता चल जाए, तो मैं विवाह कर लूंगी ? तो ठीक है वह कुंठा कुंठा ही रहनी चाहिए ।' वह घर पहुँच कर लेट गई ग्राँख मूंद कर । सहसा कह उठी—'मैं ब्याह नहीं करूँगी ।'

'तो तुम्हें कहता ही कौन है दीदी ?' उसकी बहन ने चाय लिए कमरे में प्रवेश किया ।

'ग्रोह' ! उसने बाँहें बहन के गले में डाल दीं ।

फिर सोचने लगी 'सच ही तो कहती है—कहता ही कौन है !'

वह खिड़की में जा खड़ी हुई । कुछ लड़कियाँ चली जा रही थीं । 'यह क्या फैशन है, सारा शरीर दिखाई देता है मानो नंगा । ऐसे कपड़ों का क्या लाभ ?' उसने बहन से इस विषय पर चर्चा शुरू करना चाही । परन्तु उसने देखा उसकी बहन ने भी वैसा ही पारदर्शी कुर्ता पहना हुग्रा था । ग्राज तक उसने इस ग्रोर ध्यान ही नहीं दिया था । 'हमने तो कभी ऐसा कुर्ता नहीं पहना था', उसने बहन से कहा ।

''तुम्हारे ग्रौर हमारे समय में काफी ग्रन्तर है दीदी !' बहन ने नज़ाकत से कहा ।

नीना फिर खिड़की में जा खड़ी हुई । उसकी दृष्टि सामने की छत पर पड़ी । उस मकान में कुछ दिन हुए नए किराएदार ग्राए थे । एक युवक दरवाजे की चौखट के सहारे खड़ा चाय पी रहा था । उसके सामने मुंडेर पर एक युवती बैठी थी । युवती की पीठ नीना की ग्रोर थी । 'उसकी पत्नी होगी' नीना ने सोचा, 'युवक क्लर्क होगा किसी दफ्तर में । क्लर्क की पत्नी ! बेचारी !'

उसे युवती पर दया आने लगी।

'चाय पीलो दीदी', उसकी बहन ने कहा।

उसने चाय की प्याली ली और मुंडेर पर जा बैठी। फिर खिड़की में आ गई। युवक शायद कमरे में चला गया था, युवती दरवाजे के बाहर खड़ी, भीतर को देखती हँस रही थी।

'पेट में बल पड़ रहे हैं। ऐसी भी क्या बात होगी?' उसने सोचा। साथ ही उसके होठों पर हल्की मुस्कान फैल गई।

'दीदी'

'हुँ'?

'आज मैंने एक बहुत अच्छी स्वैटर देखी।'

'अच्छा!'

'ले लूँ?'

वह कुछ देर चुप रहने के बाद बोली, 'कुछ दिन ठहर जाओ।'

उसने फिर खिड़की में से देखा। सामने कोई नहीं था। कमरे के द्वार पर पर्दा गिरा हुआ था।

नीना सोचने लगी—सभी पैसों के लिए मेरे पीछे पड़े रहते हैं। किसी को स्वैटर चाहिए, किसी को सिनेमा के लिए पैसे, किसी को दवाई, किसी को सहेली को भेंट देनी है। लोग भी तो यही कहते हैं—"पिताजी धन के लिए लड़की का ब्याह नहीं करते। तनख्वाह जो मिलती है—पाँच सौ!" विचारों ने करवट बदली —'तो क्या मैं विवाह करना चाहती हूँ; कामता···अभी भी हो सकता है··· पिताजी मानेंगे नहीं—मुझे स्वयं निश्चय करना चाहिए—नहीं, इस विषय पर कुछ सोचना ही नहीं चाहिए।'

× × ×

दूसरे दिन सभी की 'मैर्टनिटी लीव' मंजूर हो गई।

'आज तो आप बहुत खुश हैं बीबी जी!' बूढ़ी चपड़ासिन रामदेई ने कहा।

'अच्छा! क्यों भला?'

'शायद कोई बात पक्की होने वाली है।'

उत्तर में वह मुस्कराई और दफ्तर से बाहर निकल गई।

काफी देर बाज़ार में घूमती रही। बहन के लिए स्वैटर देखती रही। एक दुकान पर स्वैटर पैक करवा रही थी कि उसकी दृष्टि सामने लटकती नेकटाइयों पर पड़ी। 'ये दिखाइए' उसने कहा और बिना उद्देश्य के एक टाई खरीद कर पर्स में रख ली।

× × ×

वह खुश थी। उसकी बहन भी खुश थी स्वैटर पाकर। लेकिन नीना को पर्स में रखी टाई की गर्माहट महसूस हो रही थी। बार-बार लजा कर वह 'ब्लश' कर जाती थी।

नरगिस

'हम अकेले स्कूल नही जाएँगे। नरगिस होती है वहाँ। बड़ा डर लगता है हमें उससे।'

'कौन नरगिस ?'

'वही नरगिस—आपको नहीं मालूम ? कहती है—भाग जाओ, मार देंगे तुम्हें, छुरे से चीर देंगे......।'

'पागल होगी।'

'हाँ पागल, पागल ही है। सभी लोग कहते हैं—पागल है। इसीलिए तो हमें डर लगता है।'

'तुम दूसरे रास्ते से स्कूल चले जाया करो।'

'वह रास्ता बहुत लम्बा है; मैडम डाँट देती है देरी हो जाने पर और नरगिस......।'

'ठीक है भई ! मैं स्वयं तुम्हें स्कूल छोड़ आया करूँगा।'

× × ×

नरगिस—उसका सही नाम कुछ और है। जब देश का विभाजन हुआ, वह लगभग दस वर्ष की थी। उसके दो भाई थे। तीनों भाई-बहन अपने माता-पिता से छूट गए थे। दोनों भाइयों

को उसके सामने मार दिया गया था। वह भाइयों से बड़ी थी। वह चिल्लाती रही थी—भागो, वे तुम्हें मार देंगे। लेकिन दोनों उससे चिपट गए थे। एक आदमी उसे भी मारने वाला था कि दूसरे ने कहा था—रहने दो 'माल' होगी, नरगिस है—नरगिस और उसका नाम नरगिस हो गया। मूँछों वाला वह आदमी उसे साथ ले गया था। पहले ही दिन जब उसकी मूँछें और दाढ़ी उसे चुभीं तो वह रो पड़ी थी और उस आदमी ने उसे छोड़ दिया था। लेकिन धीरे-धीरे रोने पर उसे सजा मिलने लगी। उसकी पिटाई होती और उसे हँसना पड़ता।

लेकिन आँसू बहाए बिना चैन न मिलता। उस पहाड़ जैसे आदमी के नीचे वह बुरी तरह पिस जाती और हँसती रहती। जब भी वह अकेली होती, रो लेती। ज्योंही उसके 'आदमी' की आवाज़ उसे सुनाई देती, वह हँसना शुरू कर देती। वह घर था एक सुनसान खेत में। खेत बोया नहीं गया था। उसका आदमी जब बाहर जाता, घर का दरवाज़ा बन्द करके बाहर से ताला लगा देता। उसे मालूम था, इस वीरान में चीखने-चिल्लाने से कोई लाभ होने का नहीं। वह बहुत छोटी थी और बहुत डर गई थी। धीरे-धीरे साँकल खुलने की आवाज़ उसके लिए हँसना शुरू करने का 'अलार्म' बन गई। आदत बढ़ती गई और रात को हवा चलने से भी साँकल हिलती तो वह हँसने लगती। मूँछों वाले ने समझ लिया कि वह पागल हो चुकी थी। इसीलिए एक दिन उसने नरगिस को सिपाहियों के हवाले कर दिया। उसे कैंप में ले जाया गया। यहाँ, बहुत दिनों के बाद, उसे कुछ बच्चे दिखाई दिए। उन्हें देखते ही वह चिल्ला उठी—भागो, तुम्हें मार देंगे, छुरा घोंप देंगे।

बूढ़ा ज्वार

मुझे प्रतिदिन उसकी गालियाँ सुनकर जागना पड़ता है। 'हरामी काम नहीं करता। मजदूरी लेते हो तो काम भी किया करो। हराम का पैसा कभी पचता नहीं। री, मर गई! तू फिर पानी लेने आ पहुंची? देखती नहीं, मजदूर काम कर रहे हैं, मकान बन रहा है। एक तो पानी आता ही कम है ऊपर से ये चुड़ैलें चली आती हैं।'

मैं सिरहाने की खिड़की से झाँकता हूँ। वह चूड़ीदार पायजामे को पैरों में फँसाने की चेष्टा कर रहा होता है। लड़की, जो पानी भरने आई है, जानती है कि बूढ़ा उसे पकड़ नहीं पाएगा। पायजामा पहनने में उसे काफी समय लगता है। फिर चमार की लड़की को छूकर दुबारा नहाना बूढ़े के लिए काफी मुश्किल काम होगा। मजदूर भी उसकी झिड़कियों की ओर ध्यान नहीं देते। उन्हें मालूम है कि मालिक (बूढ़े का पुत्र) उसकी बातों पर कान नहीं देता। लेकिन कभी-कभी किसी निठल्ले, दीवार की ओट में सुस्ताते मजदूर के लिए बूढ़े की तीखी दृष्टि और कठोर शब्द महान् परिचालन-शक्ति का काम करते हैं। 'कब से खड़ा है रे? सवेरे ही आराम करने बैठ गया। ज़माना ही काम-चोर हो गया है। चल गारा ले चल!' तभी उसकी दृष्टि रेत के घरौंदे बनाते

बच्चों पर पड़ती है। 'भाग जाओ यहाँ से, इसी रेत में रोप दूँगा। सारी रेत उड़ा के रख देते हैं।' बच्चे एक ढेर पर से उठकर दूसरे ढेर पर जा बैठते हैं।

मेरी पत्नी मुझे बताती है—'कल गौरी की गाय दीवार से पीठ खुजलाने लगी तो बूढ़े ने लोहे की सलाख से उसे इतना पीटा कि बेचारी को नील पड़ गए।'

'कितनी ममता है इसके हृदय में मकान के लिए,' मैंने कहा।

"और बहू कह रही थी," मेरी पत्नी ने कहना जारी रखा, "इसे तो यूँ लगता है जैसे मकान इसकी हड्डियों पर बन रहा है। बूढ़ा चुप बैठ ही नहीं पाता। अभी मकान की छत भी नहीं पड़ी और यह गाय की बलि देने लगा था।"

× × ×

दिनभर बहुत गर्मी रही। गर्मी के कारण मजदूर कुछ सुस्त थे। परन्तु वह आधी बनी दीवार की छाया में बैठा उन्हें ढीला काम करने पर गालियाँ सुना रहा था। शाम को मजदूर मजदूरी ले रहे थे और वह कह रहा था—'आधे दिन की मजूरी मिलनी चाहिए तुम्हें। इसकी जान तो देखो, बैल है और काम धेले का नहीं करता। मुझे यदि खाँसी और दमे ने मजबूर न कर दिया होता तो तुम्हारे जैसे चार का काम अकेले कर दिखाता।'

× × ×

एक दिन उसकी गालियों के बजाय उसके रुदन ने मुझे जगा दिया। वह कह रहा था—'देखो न सभी लोग छत पर ठण्डी हवा में सो जाते हैं। मैंने कहा था, मेरी खाट भी ऊपर लगा दो।

मगर सामान की रखवाली कौन करे ? मच्छरों ने काट-काटकर लहू निकाल दिया है। ऊपर से उड़कर रेत गिरती है और नीचे से मच्छर काटते हैं।'

'हाँ' यह भी कैसा जुल्म है। दिनभर तो तुम भाग-दौड़ करते रहते हो,' विधवा पुनिया चमारिन ने कहा। पुनिया की लड़की को वह पानी नहीं भरने देता लेकिन पुनिया से उसकी बहुत बनती है। एक-दूसरे से न जाने क्यों सहानुभूति है इन्हें।

बूढ़ा कह रहा था—मैं भी क्या कम हूँ ? कल से तुम बल्ली को भेज दिया करो पानी भरने। मुझे क्या, लोग रेत नहीं पत्थर भी उठा ले जाएँ। मैं तो इनके लिए मरता रहूँ और ये मुझे मच्छरों के आगे डाल दें।

× × ×

अगले दिन फिर उसकी गालियों ने मुझे जगाया।

"मुई फिर बाल्टी ले आई है। छत पे फेंक दूँगा तुम्हें और तुम्हारी बाल्टी को।'

मैंने बाहर देखा। बल्ली नल पर पानी भर रही थी। बूढ़ा पायजामा ऊपर चढ़ाने की कोशिश कर रहा था।

'अरे सुलताने ! पैरों में जंजीरें पड़ी हैं क्या ? चल नहीं पाते ? × × × रेत में खेलने आ जाते हैं जैसे इनके बाप ने पैसे दिए हैं।' बूढ़े ने पायजामा कुछ जल्दी पहन लिया और छड़ी उठाकर पानी भरती लड़की की ओर लपका।

किन्तु छड़ी उठी की उठी रह गई। घर के भीतर से घूँघट निकाले बहू निकली और लड़की से बोली—'भर ले बल्ली, पानी पर भी मोल लगता है क्या ?'

ग्रौर बूढ़ा धीरे-धीरे लौट ग्राया। वह पानी भरती लड़की को देखता रहा, ग्राँख बचाकर सीमेंट की बोरी से सीमेंट ले जाती पनिहारिन को देखता रहा, बेकार खड़े सुलताने को देखकर उसने मुंह फेर लिया।

× × ×

ग्राज उसने चारपाई चौराहे में ला रखी है। चारों ग्रोर गंदगी के ढेर हैं। दुर्गन्ध भी स्वाभाविक है।

'भला वह ग्रपनी खाट वहाँ क्यों ले गया ?'

मेरी पत्नी पूछती है।

मैं चुप रहता हूँ; मगर जानता हूँ कि वह खाट वहाँ क्यों ले गया है। वह रह-रह कर, चतुराई से दाहिनी ग्रोर की गली में देखता है ग्रौर मैं जानता हूँ कि वहाँ से पुनिया चमारिन का दरवाज़ा सामने दिखाई देता है।

माँ और पुत्र

मेरी माँ मुझ से रुष्ट रहती है। कारण यह कि मैं समझता हूँ, मेरी बातें समझने की योग्यता उसमें नहीं है। वह सोचती है—मैं जो कुछ कहता हूँ, शायद ठीक ही होगा। इसीलिए वह मुझे कभी मन्दिर जाने को नहीं कहती। भोजन करने से पूर्व कुल-देवता की पूजा करने की नसीहत भी वह नहीं करती।

वह प्रतिदिन भोर-समय मन्दिर जाती है। देवता पर चढ़ाने के लिए फूलों के कई पौधे उसने आँगन में लगाए हैं। मेरे जागने से पहले ही वह कुछ फूल चुनकर मन्दिर में चढ़ा आती है क्योंकि मैं उसे बार-बार कहता हूँ—फूल टहनी पर ही सुन्दर लगते हैं। मैं उन पौधों को कभी पानी नहीं देता लेकिन वह कई बार मुहल्ले की स्त्रियों से कहती है—जिस दिन इन पौधों को पानी नहीं दे पाऊँगी, मेरा बेटा देगा।

कोठरी में बड़े-बड़े सुराख़ हो जाते हैं। मैं कहता हूँ—माँ, कोई बड़ा सांप रहता है यहां। 'नहीं, मुआ चूहा बना जाता है' वह कहती है। रात भर मैं सांप के भय से जागता रहता हूँ और वह मुझे कहती रहती है—जाग रहे हो क्या? सो जाओ। (मैं जो जाग रही हूँ।)

मैं परीक्षा देता हूँ और वह मेरी सफलता के लिए मनौतियाँ मानती है। किन्तु मुझे इस विषय में वह कुछ नहीं कहती क्योंकि

मैं कहता हूँ—परिश्रम मैं करूँ और भोग पत्थर के देवता को! मेरी सफलता पर वह मन्दिर में प्रसाद चढ़ाती है तो मैं पूछता हूँ 'यह दकियानूसी क्यों करती हो?' इस पर वह नाराज़ हो जाती है। अपने देवता का अपमान वह सह नहीं सकती।

मेरी पुस्तकों पर धूल जम जाती है लेकिन वह झाड़ती नहीं। मैं जानता हूँ कि वह डरती है, कहीं कोई चीज़ इधर की उधर न हो जाए और जब मैं स्वयं झाड़ता हूँ तो वह समझती है मैं नाराज़ हो गया हूँ।

मेरी बड़ी बहन मुझ से कहती है—'तुम माँ को नाराज़ क्यों कर देते हो?' मैं मुस्करा कर बात टाल देता हूँ। भला मैं माँ से या माँ मुझ से क्यों नाराज़ होगी? मैं उसकी बात नहीं मानता इसलिए वह कभी-कभी दुखी होती है परन्तु उसे विश्वास है कि उसके लगाए तुलसी के बिरवे को एक दिन मैं ज़रूर पानी दूँगा। तुलसी उसके लिए इतनी पवित्र और रक्षणीय है कि सर्दियों की रातों में उठ-उठ कर देखती है—कहीं इसकी चुनरी तो नहीं उतर गई। सिवाय चरणामृत के और किसी काम में इसके पत्तों का प्रयोग 'वर्जित' है। लेकिन जब मुझे ज्वर होता है तो जो दो-चार पत्ते भी शेष हों, तोड़कर मेरी चाय में डाल देती है। मेरी बहन उसे कहती है—'कल चरणामृत के लिए तुलसी-दल कहाँ से लाओगी? दो पत्ते ही रहने देती।' माँ कोई उत्तर नहीं देती। न हँसती है, न बोलती है। चाय बनाती है और मनौती मानती है—मेरा पुत्र ठीक होगा तो तुलसी माँ का एक और बिरवा लगाऊँगी; धूमधाम से ब्याह रचाऊँगी।

कभी-कभी मैं उसकी बातें समझने की चेष्टा करता हूँ। पर क्या करूँ? कैसे समझूँ और कैसे उसे समझाऊँ?

चूड़ियाँ न तोड़ो

गाड़ी पूरी गति से भागी जा रही थी। बाहर बारिश थी और था तूफ़ान। डिब्बे में एक मैं था और एक वह बंजारा। मैंने अनेक बार उसे रामपुर स्टेशन पर उतरते देखा था। रामपुर छोटा-सा स्टेशन था और वहाँ इक्का-दुक्का यात्री ही उतरता या चढ़ता। टूरिंग-ड्यूटी होने के कारण मुझे इस राह अनेक बार आना-जाना पड़ता था।

डिब्बा खाली था किन्तु बंजारा सीट पर नहीं बैठा था। गाड़ी सीटी देती भागी जा रही थी। बादलों की गर्ज और आँधी की भगदड़ इस सुनसान को और गहरा बना रही थी। नीरवता भंग करने के उद्देश्य से मैंने कहा—'तुम नीचे क्यों बैठे हो ? ऊपर बैठो।'

बंजारे ने हाथ जोड़े, थोड़ा मुस्कराया और वहीं बैठा रहा।

मैंने कहा—'भारी तूफ़ान है।'

उसने उत्तर दिया—'हाँ बाबू जी।'

'कहाँ जाओगे ?'

'रामपुर बाबू जी।'

'वहाँ तुम्हारा घर है ?'

'नहीं बाबू जी चूड़ियाँ बेचनी हैं।'

'रात को ? तूफ़ान में ठहरोगे कहाँ ? सराय होगी !'

'छोटा-सा ग्राम है, बाबू जी, सराय कहाँ ?'

बात पर ध्यान न देकर मैंने कहा 'यदि कल भी यूँ ही वर्षा रही तो तुम्हारी दीवाली फीकी रहेगी।'

'सुबह की गाड़ी से लौट आऊँगा बाबू जी।'

'क्यों चूड़ियाँ नहीं बेचोगे ?'

'बाबू जी वहाँ मेरी बिटिया है……'

'अच्छा ! ससुराल होगी उसकी !'

'कुछ ऐसा ही है बाबू जी ! तूफान है पर वह ज़रूर आएगी चूड़ियाँ लेने।'

'मगर तूफ़ान……'

'इससे क्या बाबू जी ?' बंजारे ने आह भरी और जैसे स्वप्न में कुछ कहता चला गया—

"अब तो अठारह साल होने लगे बाबू जी ! तब वह बिल्कुल बच्ची थी। सुनिए बाबू जी, चूड़ियों की गठड़ी लिए मैं स्टेशन पर उतरा। सारा ग्राम लिपा-पुता था। लक्ष्मी के स्वागत की तैयारियाँ थीं। मैंने भी अपनी गठड़ी खोली। 'चूड़ियों वाला आया' यह जानकर सभी बच्चे घरों को भागे पैसे लाने। एक छोटी-सी बच्ची वहाँ खड़ी रही। 'तुम चूड़ियाँ नहीं लोगी ?' मैंने उससे कहा और वह भाग गई।

"साँझ तक मैं चूड़ियाँ बेचता रहा। सूरज ढलने लगा और गठड़ी समेट मैं चला। ग्राम छोड़ने को ही था कि वही बच्ची दीवार के सहारे खड़ी दिखाई दी।

'तुम चूड़ियाँ लेने नहीं आईं।'

'माँ पैसा नहीं देती।'

'बापू से लाओ।'

'वह नहीं है।'

'तुम चूड़ियाँ ले लो मैं पैसे नहीं लूँगा।'

'माँ मारेगी।'

मैं स्टेशन की ओर चला। पीछे से वह बोली—

'बंजारे! तुम पीपल के नीचे ठहरोगे न? मैं वहाँ रात को आऊँगी चूड़ियाँ लेने।' मैं उसकी बात समझ न पाया। थोड़ी दूर चलने के बाद मुझे पीपल का एक पेड़ दिखाई दिया। उसके नीचे बने पत्थरों के चूल्हों से मैंने विचार किया कि पथिकों के लिए उस ग्राम की वही सराय थी। बच्ची ने यह सोचकर कि बंजारा रात को वहीं ठहरेगा, वहाँ आने की बात कही थी।

"न जाने क्यों, मैं आगे बढ़ नहीं पाया और वहीं ठहरने का निश्चय किया। रात को गाँव में दीपमाला हुई। दीप जले और फिर बुझ गए। मैंने बाटियाँ सेंकीं और लड़की का इन्तज़ार करने लगा।" बंजारे ने बीड़ी सुलगाई और फिर कहना शुरू किया—

"बिल्कुल सुनसान था। गीदड़ों का हू-हू वातावरण को और भी भयानक बना रहा था। ऐसे समय वह बच्ची कैसे आ सकती है? यह सोच कर मैं सोने का यत्न करने लगा। अपने पागलपन पर दुःख भी हुआ।

'बंजारे मैं आ गई।'

फुसफुसाहट—जैसे शब्द सुनकर मैं चौंक उठा।

'मुझे चूड़ियाँ दो' उसने कहा और हाथ खोल दिया। उसके पास एक पैसा था।

'यह पैसा कहाँ से लिया?'

'बापू ने दिया था जब वह लाम पर गया था। मैंने इसे खर्चा नहीं। घर के पीछे ज़मीन में दबा के रखा था।'

'तुम चूड़ियाँ ले लो, पैसा भी रख लो।' और मैंने चूड़ियों की गठड़ी उसके सामने खोल दी। बहुत-सी चूड़ियाँ बटोर कर वह खड़ी हो गई।

'मैं तुम्हें छोड़ आऊं।'

'नहीं बंजारे, तुम यहाँ आया करो मुझे चूड़ियाँ देने। मैं इन्हें पहनूँगी नहीं, ज़मीन में दबा के रखूँगी। चूड़ियाँ मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।'

वह चली गई।

रास्ते में एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी पर कोई यात्री भीतर नहीं आया। तूफ़ान का वेग कम नहीं हुआ था। बंजारे की बीड़ी कब की बुझ चुकी थी। उसने बुझी बीड़ी को फिर से जलाया और कहानी कहने लगा—

"तब से मैं हर त्योहार के दिन उस ग्राम में जाता रहा। रात को वहीं पीपल के नीचे वह चूड़ियाँ लेने आती। पाँच साल हुए, दीवाली का दिन था। मैं ग्राम में पहुँचा। वह मुझे अपने घर ले गई। उसका ब्याह हो गया था। उसका पति सुन्दर बांका जवान; फौज में हवालदार था। मुझ से बोला—

'इसे बहुत-सी चूड़ियाँ दो। चूड़ियों से इसे बहुत प्यार है!'

'मेरा जी बहुत खुश हुआ उसे खुश देखकर! अब वह चूड़ियाँ पहनेगी, छुपा कर नहीं रखेगी।' बंजारे ने आह भरी। बीड़ी को फेंका और कहना शुरू किया—

"मगर इसी बीच फिर लड़ाई शुरू हो गई। उसका बाप फ्रांस गया था, उसका पति काश्मीर चला गया। पिछली दीवाली

को जब मैं कुएँ पर पहुंचा तो वह मुझे कुएँ पर ही मिल गई—पानी भरती।

'तुम्हारे लिए बहुत सुन्दर चूड़ियाँ लाया हूँ, नए डिज़ायन की, बेटी।'

मगर वह बिना कुछ कहे चली गई। उसकी सहेलियों से मालूम हुआ, उसका पति लड़ाई में मारा गया।

रात को मैं फिर वहीं रहा—पीपल के नीचे और आधी रात को वह फिर वहाँ आई।

'लड़ाई क्यों होती है बंजारे ?'

'देश की रक्षा के लिए बेटी।'

'मगर वहाँ तो लोग मरते हैं।'

'हाँ, शहीद होते हैं। मैदान में बहादुर काम आते हैं।'

'लड़ाई के मैदान में क्या होता है बंजारे ?'

'टैंक, तोप, जहाज, पैदल……'

'और चूड़ियाँ···हाँ बंजारे मैं सोचती हूँ लड़ाई के मैदान में केवल चूड़ियाँ होती हैं' टूटी हुई चूड़ियाँ—लाल—नीली—पीली चूड़ियाँ।'

मैं उसके अनजानेपन पर कुछ न कह सका। वह फिर पूछने लगी—

'दुश्मन क्यों हमला करता है ? उनकी औरतें भी तो चूड़ियों से प्यार करती होंगी। क्या वे भी छुपा के रखती हैं चूड़ियाँ ? उनकी चूड़ियाँ भी तो टूटती होंगी। हमला करने वालों से, लड़ने वालों से कोई क्यों नहीं कहता—'चूड़ियाँ न तोड़ो'। वह रोने लगी और उसके भोलेपन पर मेरी आँखें गीली हो गईं। उसने बहुत-सी चूड़ियाँ चुनीं और जाती हुई बोली—

'तुम मुझे चूड़ियाँ देने आया करो बंजारे! मैं इन्हें पहनूँगी नहीं। ज़मीन में दबा के रखूँगी। पर नहीं, अब तो इन्हें तोड़ कर रखूँगी। नहीं—नहीं साबित ही रखूँगी। मैं किसी को तोड़ने नहीं दूँगी।' पगली-सी वह कहती जा रही थी—'कोई दुश्मन मिलेगा तो उसे भी कहूँगी चूड़ियाँ न तोड़ो!'

"वह चली गई। चूड़ियाँ लेने के लिए आज मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी।"

गाड़ी सीटी देती रुक गई। बंजारे ने गठड़ी उठाई और तूफ़ान में उतर गया। उड़ती हुई धोती स्टेशन की मद्धम रोशनी में कुछ देर तक दिखाई देती रही। गाड़ी ने फिर सीटी दी और चल पड़ी। चलती गाड़ी में एक यात्री भीतर घुस आया। मुझे रोता देखकर बोला—'बंजारे ने आपको भी रुला दिया शायद! आधा पागल है। उसका भी बेटा लड़ाई में मारा गया था। तब से पागल है। गाँव की लड़कियों को मुफ़्त चूड़ियाँ बाँटता है।'

मोहन राव

पहले दिन कुली से सामान उठवाए मैं होस्टल पहुंचा तो चौकीदार ने परिचय करवाया—'ये हैं आपके साथी।'

मैंने 'नमस्ते' की और उसने मुस्कराकर हाथ मिलाया। कहने लगा—'यह भी अच्छा हुआ काश्मीर और दूर-दक्षिण के वासी यहाँ आ मिले हैं।' 'संगम हो गया है', किसी तीसरे ने कहा।

'हाँ, मैं इनसे कश्मीरी भाषा सीखूँगा। सिखाएँगे न आप? सैर भी करवाइएगा अपने प्रांत की।'

मैंने उसे समझाया—मैं जम्मू से आया हूँ, मेरी मातृ-भाषा डोगरी है।'

'अच्छा, तो भी क्या? हम डोगरी ही सीख लेंगे।'

दूसरे दिन स्नानादि के पश्चात् उसने मुझे कॉफ़ी पिलाई और कहा 'बज़ारुकु वल्डिद्वमु' और इसका अर्थ भी बतलाया—बाज़ार को चलते हैं।

वर्ष भर उसने मुझे तेलुगु भाषा सिखाने और मुझसे डोगरी सीखने का यत्न किया किन्तु सब भूल गया है। उसे क्या कुछ याद है, नहीं कह सकता।

मैं प्रतिदिन प्रातः-सायं 'संध्या' करने बैठता। वह चुपचाप

मुझे देखता मुस्कराता रहता। एक बार भी उसने मुझ से कोई तर्क नहीं किया, पर वह स्वयं पक्का नास्तिक था। कभी-कभी मैं उसे समझाने का यत्न करता तो वह कहता—'अजी जाति का तो मैं ब्राह्मण हूँ। देखिए यह यज्ञोपवीत। न पहनूं तो घर से निकाल दिया जाऊँ।' फिर मसखरेपन से मुझे देखता रहता। कभी कहता—'आपकी प्रार्थना सुनकर ही 'आपके' ईश्वर ने मुझे यहाँ भेजा दिखाई देता है। आप संध्या करते हैं तो मैं आपके लिए दूध गर्म करता रहता हूँ।'

साथ के कमरे में एक मराठा रहता था। नाम था—विजय रामचंद्र नागरकर। नागरकर मोहनराव को 'मद्रासी' कहकर पुकारता। मोहन ने उसे कई बार कहा 'मुझे आंध्र-प्रदेशी कहा करो मराठे!' किन्तु नागरकर उसे 'मद्रासी' ही कहता। नागरकर से वह मराठी "लावणियाँ" सीख कर गाता। अर्थ तो वह जानता नहीं था, कण्ठ भी सुरीला न था। फिर भी वह गाते-गाते झूम पड़ता और सभी सुनने वाले 'वाह-वाह' कह उठते। दाईं ओर के कमरे में बंगाली स्वयंभू-भट्टाचार्य से कहता—'गुरु! बड़े चालाक हो। मुझे बंगला नहीं सिखाते। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आत्मा तुम्हें कैसे क्षमा करेगी?'

होस्टल में वह चोरी से बिजली का चूल्हा जलाता क्योंकि उसे 'कॉफ़ी' पीने का 'काफ़ी' शौक था। स्वयं पीता, सबको पिलाता। रात के एक बजे तक कॉफ़ी चलती और चलते मराठी, गुजराती, मलयालम, बंगला, असमिया गीत और मालूम नहीं क्या-क्या। होस्टलों में रहने का जिन्हें अनुभव है, वही समझ सकते हैं।

मद्रास में हिन्दी-विरोधी आन्दोलन हुआ तो नागरकर ने

उससे पूछा, "ऐसा क्यों हुआ रे ?" उसने उत्तर दिया, 'मद्रास के जन-सामान्य अनुशासन-प्रिय हैं। भला अरविंद-आश्रम को वे आग क्यों लगाएँगे ? वह तो हमारी संस्कृति का प्रतीक है··· ।'

'भारतीय संस्कृति का नाम न ले रे। उसकी आधार-शिला है—आस्तिकता और तू ! नास्तिक—महा नास्तिक !' नागरकर ने टोका। उसने उत्तर दिया—"मराठे ! बुद्धि नाम का तत्त्व तुम्हारी खोपड़ी में नहीं । तू कॉफ़ी पी और कोई 'पोआड़ा' सुना ।" और फिर वही चहल-पहल शुरू हो जाती । एक दिन पड़ौस से एक बालिका को बुला लाया । उससे व्रज के लोकगीत सुने । उस दिन से लेकर गाड़ी में बैठने तक उसके मुख से ब्रज का एक लोकगीत प्रायः सुनने को मिलता । 'जोगिनि पल्ला लट्क्यो' यह है उस गीत का मुखड़ा । शेष गीत मोहन राव अपने साथ ले गया है, अतः मुझे याद रखने का कोई अधिकार नहीं है ।

उसे मैं डोगरी का एक गीत सुनाता—'असें कुसैगी मंदा निं आखनाँ, चन्नै दी चाननी चन्नै कनै*···

× × ×

मोहन राव फिर मिलेगा या नहीं, ईश्वर जाने । परन्तु कभी-कभी स्वप्न में आ जाता है—लुंगी पहने । धीरे-धीरे गुनगुनाता है—असें कुसैगी मंदा निं आखनाँ······ ।

आँखें खुल जाती हैं । सोचता हूँ, विंध्याचल के पार भी मेरा

---

*हम किसी को दोष नहीं देंगे,
चाँद की चाँदनी चाँद के साथ ही रहती है ।

ही दिल धड़कता है। आँसू झरते हैं, तो पवन से कहता हूँ—ले जाओ इन्हें—विन्ध्याचल के पार! मछलीपट्टम के निकट सागर की लहरों में मिला देना। खारा पानी खारे पानी से मिलना ही चाहिए। मोहन राव तो शायद, अब मिलेगा नहीं। दोष भी किसे दें, हम तो पहले ही कह चुके हैं······'असें कुसैगी मंदा नि आखनाँ, चन्नै दी चाननी चन्नै कनै'······।

गुब्बारे

'शोरी बेटे ! अच्छे बेटे ! जागो न ! जागो न बेटे !' घर की मालकिन ने लिहाफ़ से मुँह निकाल कर पुकारा। हवा में काफ़ी ठण्डक थी। उसने तकिया बाँहों में भींचते हुए करवट बदली। कोई उत्तर न मिलने पर उसने जरा कड़े स्वर में कहा—"शोरी ! उठा कि नहीं ? टिंकू को स्कूल जाने में रोज देर हो जाती है।"

शोरीलाल आँखें मलता उठ बैठा। बिस्तर लपेटा, खाट खड़ी करके उस पर रख दिया। बरामदे में ठण्डी हवा लगातार आया करती है। बिस्तर जैसा भी है, शीत से बचाने का भरसक यत्न करता है। शोरीलाल उससे बिछुड़ना नहीं चाहता था। जब वह शहर आया था तो माँ ने कहा था 'वहाँ ठण्ड नहीं होती रे।' और वह सचमुच उस शहर की कल्पना में खोया आ गया था, जहाँ बर्फ में चलने से उसके पैर सुन्न नहीं होंगे—घर को गर्म रखने के लिए जलाई गई आग का धुआँ उसकी आँखों को लगेगा नहीं। मगर अब हर रोज़ उसे भेड़ों की गर्म साँसों से गर्म हुई कोठरी की याद आती थी।

"अभी तक सोया पड़ा है रे ? मुनीम जी ज़रा उठाना इसे।" मुनीम का नाम सुनते ही शोरी प्राणवान हो गया। कुर्ता नीचे खींचा जिससे पुरानी नेकर का फटा भाग ढक जाए।

"चला जी" कहकर वह रसोईघर से बाल्टी उठा कर बाहर चला गया।

शोरी लगभग बारह वर्ष का छोकरा है। घर का मालिक जंगल का ठेकेदार है। पहाड़ में नौकर सस्ते मिल जाते हैं; सीधे-सादे और परिश्रमी। शोरी को इस घर में काम करते दो वर्ष हो गए हैं।

नए घर में शोरी ने अपने आपको रमा लिया है। मालिक-मालकिन को अच्छी तरह समझ गया है। बर्तन माँजने और कपड़े धोने से लेकर मालकिन के पैर दबाने, टिंकू को स्कूल छोड़ने, घर लाने और मुनीम की विशेष आवश्यकता पूरी करने तक का काम उसे करना पड़ता है।

वैसे मालकिन उसका काफ़ी ख्याल रखती है। वह धूप में न फिरे, इसकी उसे विशेष चिंता रहती है। "बीमार हो जाएगा बेचारा। वह भी तो किसी माँ का जाया है।" मगर छाया में खड़ा टिंकू जब पतंग उड़ाने की चेष्टा करता है तो धूप में 'कन्नी छोड़ने' का काम शोरी को ही करना पड़ता है। यदि कभी वह छत पर अकेला खड़ा पतंग निहारता मिल जाए तो मालकिन की चिंता की सीमा नहीं रहती। "आँखें लाल हो जाएँगी तो क्या होगा रे? अच्छे बच्चे कभी पतंग नहीं उड़ाते।"

शोरीलाल को मालूम है कि मालिक घर में बहुत कम क्यों रहता है। पहाड़ में उसने एक गूजरी 'रखी हुई है'। उसे वह दिन याद आता है जब नौकरी पाने के लिए उसके बापू ने उसकी माँ को मालिक के पास भेज दिया था। उसकी माँ का चेहरा अजीब दाग़ों से भर गया था। उस समय उसने सोचा था जंगल में मच्छरों ने काटा होगा। उसका बाप खुश था और जब मालिक

ने शोरी को भी नौकर रखने की बात कही तो उसके माता-पिता श्रौर भी खुश हुए थे। लेकिन उसके हृदय को पहला धक्का उस समय लगा जब रात को मुनीम ने उसे जोर से भींच लिया श्रौर प्रातः झाड़ू देते समय उसने मालकिन के शीशे में देखा तो उसके गाल पर भी वैसा ही एक निशान बना हुश्रा था जैसे कि उसने उस दिन माँ के मुख पर देखे थे।

श्रच्छे नौकर की भाँति वह जानता है कि उसे गली-मुहल्ले वालों से मेल नहीं बढ़ाना है, मुहल्ले के दूसरे नौकरों से बातें नहीं करनी हैं। मुझ से वह काफ़ी खुला हुश्रा है। सभी भेद की बातें वह खोल देता है क्योंकि श्रपने बच्चों के लिए गुब्बारे लेते समय, कभी-कभी जब मालकिन सैर को गई हो, मुनीम चौराहे में ताश खेल रहा हो, मैं उसके लिए भी एक गुब्बारा खरीद लेता हूँ। ऐसे ही सुश्रवसर में, एक दिन मैंने उससे पूछा—

"शोरीलाल तुम्हें काम तो बहुत करना पड़ता है ?"

"हाँ, थक जाता हूँ।"

"तुम्हें इतने पैसों पर कहीं श्रौर नौकर करवा दें ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"बापू की नौकरी…"

मैं समझ गया। वह गुब्बारे वाले की श्रोर देख रहा था। उसकी श्राँखों की नीली पुतलियाँ मानो गुब्बारों में इस प्रकार खो जाना चाहती थीं जैसे बादल भरे श्राकाश में कपोत-पक्षी। मगर चौराहे पर मालकिन की साड़ी दिखाई दी श्रौर मैं शोरीलाल से श्राँखें चुराकर एक श्रोर चला गया। दूसरे दिन उसकी मालकिन ने मुनीम को संबोधित कर मुझे सुनाया—

"नौकरों को भड़काना नहीं चाहिए।" साथ ही कड़ी चेतावनी दी—"यदि फिर कभी ऐसा हुआ तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"

किन्तु एक दिन शोरी चला गया, न जाने कहाँ। उसकी मालकिन को सन्देह है कि मैंने ही उसे भगा दिया।

जब भी मुझे कोई गुब्बारे वाला दिखाई देता है, शोरीलाल की नीली आँखें मेरे सामने आ जाती हैं। किन्तु उनका सामना करने का साहस मुझ में नहीं है।

मछेरा भला !

तीस तारीख और जेब में पन्द्रह पैसे की राशि शेष थी। सिटी चौक से लेकर रघुनाथ मन्दिर तक उसने तीन बार 'पद-यात्रा' की, पर पन्द्रह नए पैसों से खाने योग्य मिल ही क्या सकता था। पन्द्रह पैसों के भुने चने जेब में डाल, धीरे-धीरे—दाना-दाना कर मुंह में डालते—प्रयत्न से धीरे-धीरे चबाते, उसने फिर बाजार के तीन चक्कर लगाए। फिर छबील से ठण्डा पानी पिया।

प्रत्येक मास के अन्तिम दिनों में ऐसी ही दशा होती है। दूसरे दिन प्रातः से ही भूख लगने लगी। दो-तीन बार पानी पिया पर पानी से प्यास बुझती है; भूख नहीं मिटती। वह उठा दो पुस्तकें उठाईं और बाजार बेचने गया। आठ रुपये, छः आने मूल्य की उन पुस्तकों को देख दुकानदार बोला, "दो रुपये मिल जाएँगे।" 'मरता क्या नहीं करता' सोच उसने दो का नोट हाथ में पकड़ लिया। परन्तु कुछ खाने को जी नहीं माना। अपनी असहाय दशा पर उसे अत्यधिक क्षोभ हुआ।

चलते-चलते वह तवी नदी पर पहुंचा। फिर किनारे-किनारे चलता, रेत पर बने पक्षियों के पैर देखता दूर निकल गया। एक मछेरा नदी में डोरी फेंके पानी में खड़ा था। वह भी एक पत्थर पर बैठ गया। भूख की तीव्रता की एक सीमा होती है। उसके

बाद वह मद्धम पड़ जाती है, इतनी कष्टदायक नहीं होती।

थोड़ी देर बाद मछेरा बाहर आकर उसके साथ के पत्थर पर बैठ गया। बोला, "सुबह से लगा हूँ पर एक भी मछली नहीं आई।"

"मुझे दिखाओ तो!"

उसने डोरी नदी में फेंक दी। अपने भीतर वह एक नए प्रकार की उमंग, स्वच्छन्दता का भास करने लगा। थोड़ी देर बाद मछेरा भागा, "खींचिए बाबूजी—फँस गई है।" मछली काफी बड़ी थी। मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

"कमाल ही कर दिया बाबूजी! यह मछली आप ही ले जाइए।"

"नहीं, तू ही रख ले। यहाँ और कोई मछेरा नहीं आता क्या?"

"नहीं बाबूजी, मैं अकेला ही आया करता हूँ।"

"ठीक है, मैं भी कल से आ जाया करूँगा।"

"बहुत अच्छा हो बाबूजी, मेरे पास एक बहुत अच्छी छड़ी है। एक बार एक गोरे ने दी थी। पर यह मछली आज आप ही ले जाइए। हम तो खाते ही रहते हैं।"

मछली ले वह घर को चला तो सोचने लगा—पुस्तकें पढ़ाने की अपेक्षा हमें मछलीगीरी ही सिखाई गई हो तो हम कभी भूखे न रहें।

अगले दिन वेतन मिला। शाम को मछेरे की याद आई पर उधर जाने को मन नहीं माना। 'यह भी कोई काम है' उसने अपने आपको सान्त्वना दी। पर कहीं से कोई कहता—मछेरा प्रतीक्षा कर रहा होगा। 'इतनी डिग्रियाँ और यह काम!' चलो,

'कॉसमो चलते हैं। वहीं मछली खाएँगे। बॉलरूम का समय है।'

कोट पहन उसने जेब में हाथ डाला। कभी-कभी बिल पूरे रुपयों का बनता है और 'टिप' के लिए कोई सिक्का नहीं होता।

पर···यह क्या—ज़मीन पैरों के नीचे से निकल गई जैसे। जेब तो वहाँ थी ही नहीं। आज फिर उपवास हो जाएगा। उस का सिर घूमने लगा और पैर स्वयमेव नदी की ओर चल पड़े।

ग्रादर्श ग्रौर यथार्थ

(चार पत्र)

(एक)

सोचती हूँ, तुम्हें कैसे संबोधित करूँ। ग्रनेक पत्र पड़े हैं, मेरे पास जिनमें तुमने न जाने क्या-क्या संबोधन मुझे लिखे। मेरे भी ग्रनेक पत्र तुम्हारे पास होंगे या शायद वे सभी चिट्ठियाँ तुमने जला दी होंगी।

गलती कर रही हूँ 'तुम' नहीं, 'ग्राप' कहना चाहिए ग्रब तो ! पर न जाने क्यों, मन मानता ही नहीं है। तुम बहुत रुष्ट हो मुझसे, मैं जानती हूँ। यह भी मानती हूँ कि तुम्हीं सच्चे हो। यह भी जानती हूँ कि तुम मेरा पत्र पढ़ना पसंद नहीं करोगे।

मुझे वे दिन याद ग्राते हैं जब तुम पहली बार हमारे गाँव ग्राए थे। मुझे, ग्रब भी, संझा समय बारजे पर खड़े पश्चिम की ग्रोर निहारते दिखते हो। ग्रब भी, नियमित रूप से तुम्हारे दीपक में तेल भर देती हूँ यद्यपि सारे मकान में बिजली लग गई है।

प्रतिदिन उठा-उठाकर पुनः रख देती हूँ वे सारी पुस्तकें—बालोपदेश से लेकर कामायनी तक (जो शायद ग्रंतिम भेंट थी तुम्हारी मुझे)। 'शायद' इसलिए लिख रही हूँ कि 'ग्रंतिम' कहते दिल बैठ-सा जाता है।

अभी भी मेरी लिखाई में कई त्रुटियाँ होंगी, परन्तु अब इनके सुधरने की आशा दिखाई नहीं देती ।

(दो)

मास भर हुआ है तुम्हें एक पत्र लिखा था, उत्तर नहीं आया। तुम उत्तर देना ही नहीं चाहते । सचमुच तुम मुझे झूठी समझते हो । पर मेरा मन मुझसे कहता है—'तुम सच्ची हो ।' सच ही, मुझे नहीं मालूम था कि मैं विवाहिता हूँ । कभी-कभी मैं इसे सहेलियों का मजाक समझ लेती थी । किन्तु, अब जो मुझे मालूम है कि मेरा खरीदार जीवित है; कैसे कहूँ कि तुम झूठे हो ? सच्चे ही हो तुम !

(तीन)

कल तुम्हारा पत्र मिला । कैसे लिखूँ, कितनी प्रसन्नता हुई इसे पाकर । तुमने जो भारतीय नारी का आदर्श लिखा है, उसके लिए कृतज्ञ हूँ । ईश्वर मुझे शक्ति दें, इस आदर्श से कहीं विमुख न हो जाऊँ !

(चार)

बहुत दिनों के बाद पत्र लिख रही हूँ । बहुत दुःखी हूँ । पत्र लिखने से मन का भार कुछ हल्का हो जाए ।

आज मैं जा रही हूँ श्वेत वस्त्र पहने । मालूम है कहाँ ? ससुराल ।

"चौंक क्यों गए ?"

"इस समय तुम सुखी जीवन बिता रहे हो और मैं दुःख

की बात सुना रही हूँ। आज प्रातः ससुराल से संदेश आया है कि मैं विधवा हो गई हूँ।

मुझे जाना है अपने पति के स्वर्गवास पर रोने। उस पति को मैंने कभी नहीं देखा। कहते हैं 'सत्तर वर्ष की आयु में वे मुझे छोड़ गए।'

मेरी बूढ़ी माँ आज भी पुकार-पुकार कर कह रही है—तेरा बापू होता तो मरने वाले की कुर्की करवा कर तीन हजार ले आता। पर मैं सोच रही हूँ, काश! किसी ने मुझसे कभी कहा होता—

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो।

मानोगे, प्रसादजी से भारी भूल हुई है।

'आँसू से भीगे आंचल पर,
जीवन का सब रखना होगा।
तुमको अपनी स्मिति-रेखा से,
यह संधि-पत्र लिखना होगा'।

गलत है यह। मुझसे पूछते तो ये पंक्तियाँ इस प्रकार होनी चाहिए थीं—

आँसू से भीगे आंचल पर,
जीवन का सब रखना होगा।
तुमको आँसू की धारा ले,
जीना होगा, मरना होना।

तारों की छाँह

प्रभात से पूर्व का भुटपुटा था, रघु मेला देखकर घर को लौट रहा था। पूरा एक सप्ताह लगता है यह मेला। रात को दिन से भी अधिक चहल-पहल होती है। मेले में नए मित्र बनते हैं, पुरानों से मिलन होता है; व्यापारी लोग व्यापार करते हैं, बांझ स्त्रियाँ गोदी भरने की मनौतियाँ मानती हैं। भीड़ पीछे छूट गई थी; हँसते-हँसते उसने सभी से विदा ली थी और इस पगडंडी पर एकाकी चला जा रहा था। पक्षी बसेरे छोड़ रहे थे। अचानक उसे सुनाई दिया—छन-छन-छन। वह इस ध्वनि से अभ्यस्त था। ग्वालिनें दूध ले जा रही थीं। झंकार निकट आती गई और दूध वाली स्त्रियाँ भी। वे चार थीं, चारों ने सिर पर मटके उठाए थे—किसी ने दो, किसी ने तीन, किसी ने चार। उनमें से एक जो आयु में सबसे छोटी प्रतीत होती थी, कुछ गा रही थी। धीरे-धीरे वे उसके बिल्कुल पास आ पहुँचीं। उनमें से एक ने कहा—'किन्नी सोहनी ऐ तारें दी लो'।[1] गाने वाली ने कहा—'लो नईं छाँ'।[2]

---

१. तारों की रोशनी कितनी सुन्दर है।

२. रोशनी नहीं, छाँह।

उसे अकेला खड़ा देख वे हँस दीं। उसी युवती ने कहा, "मेले में सब कुछ गँवा आया है।"

रघु ने देखा अपार सौन्दर्य। उस मद्धम प्रकाश में वह जवान देह दीपक के आलोक में स्वर्ण-प्रतिमा जैसी दिखाई दी उसे। वे आगे निकल गईं, गीत बंद हो गया, किन्तु, छन-छन-छन की आवाज मानो पेड़ों को जगाती चली जा रही थी। वह धीरे-धीरे चलने लगा; स्यात् वह फिर गाए।

× × ×

नगर के निकट पहुँच गए थे वे, एक व्यक्ति ने पुकारा—"महरी, कितना पानी डाला है आज?" वे रुक गयीं, वह भी पीपल के नीचे खड़ा हो गया, किसी को उसकी उपस्थिति का भान न था।

"नहीं, महाराज, पानी नहीं मिलाया है।"

"झूठ कहने की तो बान है तुम्हारी। शीशी लगाएँगे, नीचे रखो मटकियाँ।"

काफी देर बातें होती रहीं, बाबू रौब जमाता रहा—"ढरकवा दूँगा सारा दूध"—वह कह रहा था। रघु को इस वार्ता में आनंद आ रहा था। वह उस युवती को बड़े ध्यान से देखने का यत्न कर रहा था जो अपनी मधुर वाणी से उसे मुग्ध कर चुकी थी, जिसकी चाल उसके हृदय पर अंकित हो चुकी थी। वह एक ओर मौन खड़ी थी।

अब उनकी बातें धीरे-धीरे हो रही थीं, वह सुन नहीं पा रहा था। उसे ऐसा लगा जैसे वह कोकिल-कंठी रो रही है। "पानी मिलाती है तो दंड भी भुगतना पड़ेगा, अच्छा है," वह

सोचने लगा।

"जल्दी कर, तारों की छाँह रहते पहुँच जाएँ।" उनमें से एक कह रही थी। एक ने आगे बढ़कर उसकी मटकियां उतरवा दीं और वह उस व्यक्ति के पीछे एक ओर चली गई।

पत्थर बना वह देखता रहा, कौतूहल से उस दिशा को निहा-रता रहा जिस ओर वह बाबू के पीछे चली गई थी।

थोड़ी देर के बाद वह लौट आई। एक ने मटकियाँ उसके सिर पर रखवा दीं। छन-छन-छन फिर आवाज आने लगी किन्तु इस संगीत में वह मधुरता नहीं थी, उसकी चाल में वह लोच नहीं थी। उसकी मटकी में दूध पानी वाला था, उसका आंचल अब सचमुच मैला था और रघु का मेला फीका हो गया था।

हिन्दी मीडियम

"इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ?"

नरेन्द्र अवाक् रह गया इस उत्तर से। चाय की प्याली उसने वापस मेज पर रख दी। उसे ऐसे लगा जैसे वह कुर्सी टूट जाएगी और वह नीचे गिर पड़ेगा, उसके पैर ऊपर उठ जाएँगे और चाय का मेज उलट जाएगा।

पिछले सात दिनों में वह दस लड़कियां देख चुका था परन्तु ऐसा उत्तर उसे किसी ने नहीं दिया था। उसने टाई की 'नाट' ठीक करने की कोशिश की, देखा कि कोट के सभी बटन अपनी-अपनी जगह मौजूद थे। मन को स्थिर करते हुए उसने धीमे स्वर से कहा, "जी क्या कहा आपने ! क्षमा कीजिए मैं ठीक से सुन नहीं पाया।" उसने मुस्कराने की चेष्टा की। लेकिन उत्तर अब की बार पहले से अधिक स्पष्ट था—"बी० ए० आगरा यूनिवर्सिटी से किया गया है, इसमें आपको क्या कष्ट है ?" लड़की ने मसखरेपन से कहा। उसकी 'अदा' पर तो वह मुग्ध हो गया था लेकिन इतनी कड़वी गोली निगलना और चेहरे पर सिलवट भी न लाना उसके बस की बात न थी। नरेन्द्र के कान लाल हो गए, कनपटियाँ मानो जलने लगीं।

कनाडा से आया था मित्रों को कहकर—शादी करने जा रहा

हूँ। तीन वर्ष लगातार उस निगोड़ी को कौन-कौन-सी 'गिफ्ट' नहीं भेजी थी उसने, किन्तु पगली ने बाल कटवाने से इन्कार कर दिया था। 'जूँ-भंडार रखना हिन्दुस्तानी लड़कियों की गंदी आदत है' उसके इस रिमार्क ने सारे किए-कराए पर पानी फेर दिया था। उसने भी निश्चय किया था कि अनुपम लड़की से शादी कर दिखाएगा। "तुमसे सुन्दर लड़की से ब्याह करूँगा। तुम्हें बुलाऊँगा, जरूर देखने आना" वह कहकर आया था और उसके पश्चात् भाभी से कहा था, "भाभी हम तुम्हारी इंपारटेंस तब मानें जब विदेश में जाने योग्य लड़की ढूँढ़ दो।" लड़कियों की खोज शुरू हुई तो अपनी लाडली को विदेश भेजने वालों की काफ़ी कमी दिखाई दी। "इसीलिए तो भारतवासी बुद्धू कहे जाते हैं।" सागर से डरने वाले लोग रॉकेट युग में भी बाहर नहीं निकलना चाहते। 'फिर से गुलाम हो जाएँगे' उसने कठोर फतवा दे दिया था। भाभी ने भी हार मानने से इन्कार कर दिया और एक के बाद एक दस लड़कियाँ एक ही सप्ताह में दिखा दीं लेकिन नरेन्द्र को विदेश जाने लायक कोई लड़की पसंद न आई। किसी का रंग जरा पक्का निकला तो किसी का कद उसे पसंद नहीं था। बहुधा लड़कियाँ अंग्रेजी ठीक नहीं बोलती थीं। 'बैड इंगलिश'!

घर के बच्चों ने फिल्मी गीत कसना शुरू कर दिया था—'वह परी कहाँ से लाऊँ···।' भाभी भी तंग आ गई किन्तु बिना पत्नी के नरेन्द्र वापस नहीं जा सकता था क्योंकि मित्रों को अपने रोमांस के लंबे-लंबे किस्से सुना चुका था। प्रेमिका का रंग-रूप भी उसने ऐसा वर्णित किया था कि अब वैसी लड़की उसे मिल नहीं रही थी।

मास भर का समय होता, तो चिन्ता की कोई बात न थी। समाचार-पत्रों में विज्ञापन देकर ही प्रयत्न किया जाता किन्तु छुट्टी का अब केवल एक सप्ताह शेष था।

"चाय लीजिए न।" उसे कोकिल-कंठी आवाज़ सुनाई दी। वह नया 'कप' तैयार कर चुकी थी।

उसने चौंककर घूँट भरा लेकिन चाय बहुत गर्म थी। उसकी जीभ बुरी तरह से जल गई।

इस लड़की का पता उन्हें एक दूर के सम्बन्धी से प्राप्त हुआ था और यह अन्तिम अवसर था उसके लिए। भाभी साथ नहीं आई थी क्योंकि वह बार-बार के इन्कार से तंग आ गई थी। इस बार वह भी तैयार था—कुछ भी हो इस बार मान लूँगा। लेकिन न जाने कैसे यह कम्बख्त प्रश्न मुख से निकला—

"आप बी० ए० हैं ?"

"जी।"

"आपने बी० ए० किस श्रेणी में किया ?"

"क्यों ?"

वह समझ गया कि बी० ए० तीसरी श्रेणी में किया गया होगा। उसने प्रश्न को मोड़ा—

"जी मेरा मतलब था कि आपने दिल्ली यूनिवर्सिटी से किया ?"

"जी नहीं, आगरा से।"

"हिन्दी मीडियम के कारण।" उसने बात समझते हुए कहा। और उधर से जैसे बंदूक से गोली छूटी—

"हिन्दी मीडियम में क्या तकलीफ है ?"

भाभी ने उसे बताया था कि लड़की हॉकी और बास्कट-बॉल

की खिलाड़ी है, तैराकी की प्रतियोगिता जीत चुकी है, लेकिन बातों में भी इतनी तेज़-तर्रार हो सकती है, एक हिन्दुस्तानी लड़की, यह वह सहन नहीं कर सकता था। लेकिन यह चांस ग्राखिरी था।

उसने चाय का घूँट निगलते हुए कहा, "मेरी भाभी ग्रापके घर वालों से बात कर लेंगी।"

"ग्रो-के" लड़की ने लजाते हुए कहा, "मैं भी एक बात पूछूँ ?"

"व्हाई नॉट ?" उसे प्रसन्नता हुई कि लड़की ने 'ग्रो-के' तो कहा।

"ग्राप बैडमिंटन खेलते हैं ?"

"थोड़ा।" वह फिर घबरा गया।

"स्विमिंग ?"

ग्रौर जैसे वह सागर में डूबता कह रहा था—

"जी, नहीं।"

'नमस्ते' कहकर वह उठा ग्रौर एक ही साँस में ड्योढ़ी से बाहर हो गया।

मनीग्रार्डर

बच्चे ग्रपने प्रिय ग्रतिथि के स्वागत के लिए पंक्तियां बाँधे, हाथों में रंग-बिरंगी भंडियाँ लिये खड़े थे। मान्य ग्रतिथि के ग्राने पर उन्हें जो नारे लगाने थे, उनका ग्रभ्यास करवा दिया गया था। प्रातः ग्राठ बजे ही बच्चों को बुला लिया गया था क्योंकि नौ बजे मान्य ग्रतिथि के ग्राने का समय था ग्रौर यह कहा जाता था कि वे सज्जन समय के बहुत पाबंद हैं। किन्तु ग्रब ग्यारह बज चुके थे ग्रौर बच्चे ग्रभी प्रतीक्षा कर रहे थे। बच्चे भूखे थे, चाहते थे छुट्टी हो जाए। कुछ तो खिसकने की बेकार कोशिश कर चुके थे। सभी ग्रध्यापक सतर्क थे ग्रौर मानीटरों को कड़े ग्रादेश दिये गए थे। यद्यपि धूप निकल ग्राई थी ग्रौर नेकर पहने बच्चों की टांगों को सुखद लग रही थी; तथापि शीत के कारण खड़े बाल ग्रभी शीत का सामना करने के लिए खड़े ही थे।

"ग्रापका मनीग्रार्डर।"

"मनीग्रार्डर!" लेकिन उस ग्रोर कुछ चहल-पहल थी। शायद वे ग्रा गए।

नहीं, एक मास्टरजी एक भगोड़े लड़के की मरम्मत कर रहे थे। पानी वाला पानी का छिड़काव करता जा रहा था।

"मनीग्रार्डर! सात रुपये का।" भेजने वाला 'रामचन्द्र।'

"रामचन्द्र! हाँ, याद ग्राया रामू।"

रामू कक्षा का सबसे पिछड़ा छात्र था। कक्षा में आए, तब तो कुछ सीखे। दो दिन आता, तो चार दिन गायब रहता। पिछले बैंच पर आ बैठता। किसी से बात नहीं करता। कितनी भी पिटाई हो, चुप्पी साधे रहता। पैरों से नंगा वह 'तेज़ चाल' से चलता और उसके पीछे चलते बच्चे बूटों की ठोकरों से उसकी एड़ियाँ छील देते। ड्रिल-मास्टर उसे झिड़कते—'बूट क्यों नहीं पहनता ? क्या बना फिरता है ?' मैं सोचता, यह गरीब भारत का प्रतीक है। आगे बढ़ता, ठोकर खाता पर घबराता नहीं। बादल की तरह पछाड़ें खाकर गिरता, फिर उठकर चल पड़ता।

मैं जानता था वह निर्धन है। दो दिन मिल में मजदूरी करता और दो दिन स्कूल में आता। इसीलिए मैं उसे कभी जुर्माना नहीं करता था। स्कूल की फीस भी वह कभी समय पर दे नहीं पाता था। कई बार छात्रवृत्ति के लिए यत्न किए किन्तु उसके अंक भी कम होते और कोई 'पहुँच' भी वह खोज नहीं पाता। परीक्षा के 'दाखिले' भेजे जाने लगे तो मैंने उससे कहा, "रामू, लड़कों से थोड़े-थोड़े पैसे इकट्ठे करके तुम्हें दाखिले की फीस पूरी कर देते हैं।" "नहीं सर ! मैं पैसे ले आऊँगा" उसने कहा था। और उसने सचमुच मुझे फीस के पैसे ला दिए थे।

"कहाँ से लाए ?" मैंने पूछा था।

"उधार लाया हूँ सर, चुका दूँगा।"

कुछ दिन बाद बाजार में देखा रामू को पुलिस वाले हथकड़ी लगाए ले जा रहे थे। रामू ने मेरी ओर देखकर आँखें फेर ली थीं। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि मिल के कैशियर के चालीस रुपये चुरा लाया था।

× × × ×

बच्चे अतिथि के स्वागत में नारे लगा रहे थे । वे मुस्कान विखेरते मंच पर जा चुके थे । हैडमास्टर साहब का आदेश मिल चुका था—उनके जाने तक कोई बच्चा अपनी जगह से हिलेगा नहीं । पोस्टमैन धीरे से कह रहा था, 'मनीआर्डर सर'। रामू ने लिखा था, "मैं आपको कई बार जुर्माना इत्यादि नहीं दे पाया। मुझे आपके कुल सात रुपये देने हैं। ले लीजिएगा, लौटाइएगा नहीं ।"

पोस्टमैन कहता था, "हस्ताक्षर कीजिए ।" किन्तु मन भी कांप रहा था, हाथ भी । जेल से छूटने पर रामू ने फिर एक मिल में काम करना शुरू कर दिया था । वहाँ एक दिन—काम करते—उसकी उँगलियाँ कट गई थीं ।

एक बच्चा कँटीली तारों में से निकल कर भागना चाहता था, मेरे पैर उसे रोकने के लिए हरकत में आ चुके थे । जोर से नहीं बोल सकता था क्योंकि कार्यक्रम आरंभ हो चुका था ।

मिनिस्टर के रिश्तेदार

मल्लाह सवारियों की प्रतीक्षा कर रहा था। सामने वह पुल था, जिसके विषय में वे अनेक दंतकथाएं सुन और रिकार्ड कर चुके थे। डाकबंगले के चौकीदार की पत्नी ने कहा था—पुल दो बार गिर गया। पीर को बलि नहीं पहुँची थी। तीसरी बार बलि लेकर पीर प्रसन्न हो गया। 'खिद्दर-पीर मनाओ, मनचाहा फल पाओ।' पुल के नीचे बहुत गहरा पानी है; गहराई की कोई सीमा नहीं, पाताललोक तक रास्ता जाता है उसके नीचे से। इसीलिए पुल के नीचे नदी में कोई 'कोठी' नहीं बनाई गई। दो ही कोठियों पर खड़ा है पुल।

मल्लाह बता रहा था—एक साधु ने डेरा लगाया—एक बार—नदी के किनारे। नदी शोर मचाती थी। साधु की तपस्या में विघ्न पड़ता था। एक रात उसने अपना डंडा उठाकर नदी की लहरों में दे मारा, 'चुप हो जा, री! न दिन को चैन न रात को आराम। न खुद कुछ करेगी न किसी को कुछ करने देगी। जय बाबा गोरखनाथ।' डंडे की मार से नदी मौन हो गई। बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं नदी में—पुल के नीचे लेकिन जरा आवाज़ नहीं होती। साधु की आज्ञा मानती हैं लहरें।

सवारियाँ आने लगी थीं और नीला को टेप-रिकार्डर पर

काम करते देख रही थीं। अचानक सबकी नजरें एक खाकी वर्दी-धारी व्यक्ति की ओर उठ गईं। बताया गया कि कश्ती खाली की जानी थी क्योंकि मिनिस्टर साहिब के कुछ रिश्तेदारों को पार जाना था। कुछ ही मिनटों में सभी लोग कश्ती से उतर गए। नीला ने अपना टेप रिकार्डर सँभाल लिया। कश्ती सफेद गदेलों और तकियों से सजा दी गयी। चाँद निकल आया था और नदी बहुत सुन्दर लग रही थी। सवारियां किनारे पर बैठ गई थीं और नीला एक लड़की से कहानी सुन रही थी—बुढ़िया का एक ही पुत्र था, बारात भरा 'मशुआ' उलट गया था और बुढ़िया ने यहीं आसन जमा लिया था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि पूर्णिमा तक उसका पुत्र बारात लेकर न लौटा तो वह जल-समाधि ले लेगी। निराहार दिनरात बुढ़िया नदी पर बैठी रहती। सभी देवता तंग आ गए उसकी ज़िद से। आखिर भगवान ने हुक्म दिया—इकट्ठा करो सभी कुछ। हड्डियाँ इकट्ठी कीं शिव के गणों ने; मांस निगल गई थीं मछलियाँ, लेकिन बुढ़िया के व्रत ने सभी देवताओं के आसन हिला दिए। विश्वास की शक्ति है, चाँदनी रात में बुढ़िया का बेड़ा तैरा, सभी का उसी प्रकार तैरे।

× × ×

उनके सामने सचमुच बेड़ा तैर रहा था, सफेद गदेलों और तकियों से सजी नाव लहरों पर नाच रही थी। लड़कियों की हँसी रुपहली नदी में बिखर रही थी। सभी दृष्टियाँ नाव पर स्थिर थीं। नीला टेप रिकार्डर से खेल रही थी और सतीश स्वयं को अपमानित अनुभव कर रहा था। उसे विश्वास था कि उनकी वेश-भूषा देखकर वे लोग उन्हें बुला लेंगे लेकिन किसी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया था। नीला ऐसे अनुभवों की अभ्यस्त

हो गई थी। अभ्यस्त तो उसे भी हो जाना चाहिए था परन्तु उसका पुरुषत्व ऐसे अवसरों पर निढाल हो जाता था।

"अब रुकना बेकार है, आओ चलें।" नीला ने कहा।

"कैसे लोग हैं ये ?" वह बहुत क्षुब्ध था।

"अच्छे ही हैं, पहले में, अब में काफी भेद है। अब तो इन मल्लाहों की लड़कियों को कोई छेड़ता नहीं। गरीबी में ही सही आज़ाद घूमती तो हैं। गढ़ी वाली लोक-कथा के जागीरदार ने तो लड़की को उठाकर नदी में ही फेंक दिया था। अब तो ऐसा अन्याय नहीं हो सकता।"

सतीश चुप था लेकिन सोच रहा था। अब भी बहुत कुछ होता होगा। किनारे पर लकड़ियों के टुकड़े बटोरती जवान औरतों के शरीर न जाने कितनी कहानियाँ कह सकते हैं। एक बारीक टुकड़े में लिपटा, वक्ष से घुटनों तक ढका शरीर···! उसने मुड़कर देखना ठीक नहीं समझा। वह नीला से पीछे छूट गया था और कुछ लोग अजीब नजरों से नीला को देख रहे थे।

"नीला।" उसने आवाज दी जिससे लोगों को पता चले कि वह अकेली नहीं है।

"लोग कहते हैं यह विराट नगरी है, पाँडव लोग यहाँ रहे थे।"

"यह भी तो कह रहे थे कि यह अंधेर नगरी है। अंधेर नगरी के अनबूझ राजा का यही नगर है।" नीला ने मुड़कर नदी की ओर देखा, उसे वह अच्छा नहीं लगा।

"बहुत-से लोग पार जाने को आतुर हैं।" नीला ने कहा।

"हाँ, होंगे। इस पार–उस पार आते-जाते उनके जीवन बीत जाएँगे लेकिन उनकी प्रतीक्षा का अन्त नहीं होगा। मिनिस्टरों के

रिश्तेदारों से ये डरते रहेंगे।"

डाकबंगले की ओर मुड़ने पर उन्हें डर हुआ कि डाकबंगले से भी उन्हें निकाल न दिया जाए उसी प्रकार जैसे नाव में से निकाल दिया गया। चौकीदार ने उन्हें बताया—'मैंने उन्हें कह दिया है कि आप मुख्यमन्त्री के रिश्तेदार हैं; इसलिए आप निश्चिन्त रहें।' उन्हें चौकीदार की सूझ पर आश्चर्य हुआ।

सतीश रातभर सो न सका। नदी का शोर, उसके लिए असह्य था। काश! कि उसके पास साधु का डंडा होता और वह लहरों को शान्त कर देता। प्रातः वे लोग उन्हें चाय पर निमंत्रित करने आए। 'हम चाय ले चुके हैं;' नीला ने कहा। उसे नीला की रुखाई पर हैरानगी हुई, कुछ लज्जा भी। लेकिन वह तो पूरी तरह इन्कार कर चुकी थी। चौकीदार ने उन्हें बताया कि मुख्यमन्त्री का रिश्तेदार समझ कर वे लोग आपके द्वारा सिफारिश करवाना चाहते हैं किन्तु आपके व्यवहार से वे बहुत निराश हुए हैं। उसे चाय की जरूरत थीं किंतु नीला सामान सहेजने में व्यस्त थी। आज उसने कमरे के भीतर ही काला चश्मा चढ़ा लिया था।

"तुम सामान क्यों सहेज रही हो?"

"वे लोग एक सप्ताह ठहरेंगे।"

"उससे हमें क्या?"

"हाँ, आपको क्या? आप तो नीली साड़ी वाली तितली पर मुग्ध हैं।"

"उसका व्यवहार तो बहुत मधुर है।"

"हाँ, वह भी मधुर है। मेक-अप है, मेक-अप। उस पालिश की हुई वीणा की झंकार नहीं, खंखार है, खंखार! आवाज़ देखी

उसकी···।"

"ओ हो तुम तो नाराज होने लगीं।"

"तुम तो चाय पीने को तैयार थे !"

झाड़ू देने वाले के आ जाने से उनका वार्तालाप शांत हो गया लेकिन आध घंटे के अन्दर वे बिना चाय पिए बस पर बैठ चुके थे। वह नीला के काले चश्मे की ओर देखने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। इतने में कंडक्टर ने आकर कहा, "साहब, यह सीट रिजर्व है मिनिस्टर साहब के कुछ लोग···।"

"चुप रहो, हम टिकट लेकर बैठे हैं। वे लोग मुफ्त भी जाते हैं, आगे भी बैठते हैं; उन्हें पहले आना चाहिए था। यहाँ कोई सीट नम्बर लगे हैं ? हम नहीं उठने के।"

कंडक्टर लौट गया। नीला ने चश्मा उतार कर उसकी तरफ देखा और बोली, "मैंने 'थर्मोस' में चाय रखी है, पी लें।"

वह सोचने लगा—काश ! कश्ती से उतरने से पहले भी ऐसी फटकार बता दी होती, तो नाश्ता भी मिल जाता और नौका-विहार की तमन्ना भी अधूरी न रहती।

पुल पार करने के बाद बस 'खिद्दर-पीर' की दरगाह के पास से गुज़री। वह नीला के कान में बुदबुदाया—

खिद्दर-पीर मनाओ,
मनचाहा फल पाओ।

मजबूरियाँ

मुहल्ला खाली हो गया था। सुनने में आता था कि शत्रु के विमान अब आबादी वाले प्रदेशों पर भी बम बरसाएँगे। वे स्वयं-सेवक जो मोर्चे खुदवाने और रात को पहरा देने का काम करते थे, अब कहीं दिखाई नहीं देते थे। रमज़ान अब खूब जोर से गीत गाता था। लगभग एक पखवाड़े से उसे कोई काम न मिला था। यह अधूरा मकान जिसके बरामदे में वह रह रहा था ठण्डी हवा और वर्षा से उसकी रक्षा नहीं कर सकता था। उसने अपना जीवन ऐसे ही मकानों में गुज़ारा है। एक मकान बन जाने पर उसे दूसरे में जाना पड़ता। दिन को मज़दूरी और रात को आराम दिलवाते थे ये अधूरे मकान। इस मकान में अभी एक महीने का काम बाकी था, लेकिन राज भाग गए थे, मजदूर भाग गए थे, ठेकेदार भाग गया था, वह पंडित भाग गया था जिसने उसे गाने से रोक दिया था। 'आसमान पर दुश्मन के जहाज हैं और तुम गीत गा रहे हो!' पंडित ने उसे फटकारा था। वह डर गया था--कहीं लोग उसे दुश्मन का जासूस न समझ बैठें।

उसे अपने गाँव की याद आती जिसकी छतें फूलों और सब्जियों से भरी रहतीं, पत्नी की याद आती जिसका बर्फ से गोरा, ऊन-सा मुलायम शरीर उसे काँगड़ी और चाय से अधिक

गर्मी देता था। उसने नसवार की डिबिया निकाली, दाँतों में भरने से पहले वह थोड़ी देर रुका। उसकी बीवी उसकी नसवार खाने की ग्रादत पसंद नहीं करती। वह प्राइमरी स्कूल में पढ़ी थी ग्रौर ग्रध्यापिका से नसवार न खाने की हिदायत सुन चुकी थी। वह स्वयं भी स्कूल जाता रहा था ग्रौर चाहता था कि घर पर ही रहे, लेकिन उसका बाप उसे मज़दूरी के लिए साथ ले ग्राया था। छोटा-सा रस्सा ग्रौर छोटी बोरी का 'कोट' पीठ पर बाँधकर जब वह पहली बार बाहर निकला तो उसे बहुत खुशी हुई थी। गली में गुल्ली-डण्डा खेलते लड़कों ने उसकी टोपी उतार ली थी ग्रौर रस्सा बिजली के खंभे पर फेंक दिया था। वह घबरा गया था। लेकिन जब पहली बार एक लड़की ने उसे कहा था—"ए हतो, यह बक्सा उठा लो," तो उसे लगा था जैसे वह बहुत बड़ा हो गया है।

ग्राज रात भर वह ग्राँख नहीं लगा पाया। उबले हुए चावल हंडिया में पड़े थे किन्तु कोई 'साग' नहीं मिला था। खाने को जी नहीं किया था।

"रमज़ान !" बाहर से ग्रावाज़ ग्राई।

"हाँ मुहम्मदू, चले ग्राग्रो।"

"तुम कहीं नहीं जाग्रोगे ?"

"कहाँ ?"

"घर ही चले चलो।"

"वहाँ भी तो मज़दूरी नहीं मिलेगी इतनी सर्दी में।"

"यहाँ खतरा बढ़ गया है।"

"ग्रच्छा !"

"हाँ, कल हमारा शाह भी चला गया। टैक्सी वाले से किराया

तय नहीं हो रहा था। पठानकोट तक दो हजार दे रहा था लेकिन टैक्सी वाला नहीं मानता था।"

"तो ?"

"खरीद ली टैक्सी चालीस हजार में।"

"वाह, तुम्हारा शाह भी बहुत अच्छा आदमी है।"

"हाँ, मुझे पिछले महीने की तनखा दे गया; सिर्फ इस महीने के पैसे नहीं दिए।"

रमज़ान सोचने लगा—यह मुहम्मदू कितना भाग्यवान है जिसकी अंटी में पैसे हैं। महीने-तनखा की नौकरी अच्छी रहती है। रोज की मज़दूरी में न काम का भरोसा, न पैसे का। रमज़ान के पास पैसा होता तो जरूर गांव चला जाता, अमन होने पर फिर लौट आता।

"तो तू कल चलेगा ?"

"हमारे पास पैसा नहीं है।"

"तो हम तुम्हारा टिकट लेगा। कश्मीर का टिकट महँगा नहीं हुआ।"

रमज़ान जानता था कि मुहम्मदू उसकी बहिन पर रीझा हुआ है। उसे मुहम्मदू की बात पसन्द न आई। किन्तु इस जीवन से ऊब गया था; बोला, "लेकिन समझो जिस आँख से लूँगा, उसी आँख से चुका दूँगा।"

"हाँ, हाँ, ठीक है।"

× × × ×

बस में सामान चढ़ाया जा रहा था। मुहम्मदू ने अपनी गठरी कंडक्टर को पकड़ा दी। रमज़ान खुश था। मुहम्मदू को शहर में

चावल नहीं मिले थे और रमज़ान अपने कम्बल में चावलों वाली हांडी सावधानी से लपेटे हुए था। सोचता—भूख लगने पर मुहम्मदू को खिलाऊँगा। टिकट के एहसान का कुछ भुगतान हो जाएगा।

ड्राइवर बस में बैठ चुका था, हार्न दे रहा था। मुहम्मदू बस में बैठ गया। रमज़ान भी बस के दरवाज़े की ओर बढ़ा—तेजी से। और-और-कम्बल दरवाजे के कोने से अटक गया, हंडिया खटाक से सड़क पर गिर पड़ी। ठीकरियाँ इधर-उधर बिखर गईं, चावल मोतियों की तरह फैल गए; भूखे कुत्ते उन पर टूट पड़े। बाबू लोग हँसने लगे। कंडक्टर ने कहा, "आगे चल, क्या देख रहा है ?" रमज़ान बाबुओं की ओर देखकर फीकी हँसी हँसा, कंडक्टर के सामने वह झेंप गया लेकिन मुहम्मदू उसकी ओर ऐसी निगाहों से देख रहा था, जैसे उसे चोरी करते रँगे हाथों पकड़ लिया हो।

मजबूर होकर रमज़ान के पैर बस के पायदान से आगे बढ़ गए। अब वह अपनी बहिन की बात मुहम्मदू से पक्की करेगा ही। कैसे नहीं करेगा ?

पेंडुलम

काफ़ी-हाऊस के एक कोने में बैठा हुआ योगराज 'योग' अपनी कविता शुरू करता है—

'पेंडुलम।'

'जी ?'

'पेंडुलम।'

'वाह ! पेंडुलम !'

'क्या सुन्दर प्रतीक है—पेंडुलम।'

मेज को चारों ओर से घेर कर बैठे युवक दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देखते हैं। इस घड़ी में पेंडुलम नहीं है। आजकल बिना पेंडुलम की घड़ियाँ अधिकतर प्रयुक्त होती हैं। सिग्रेट जलाते माचिस बुझा कर ऐश-ट्रे में छोड़कर योगराज पुनः कविता आरम्भ करता है—

'पेंडुलम

इन्सान एक पेंडुलम है,

जिसे मजबूरियों का स्प्रिंग,

इधर-उधर पटक देता है।'

श्रोताओं ने फिर दाद शुरू की—

'वाह क्या बात कही है !'

'इन्सान और पेंडुलम—खूब कही ।'

'सुन्दर उपमा है ।'

कविता-पाठ फिर आगे बढ़ा—

'इस पेंडुलम के चलने से

चलता है जीवन का चक्र ।

लेकिन

सबसे जरूरी चीज़ है रुपये की कुंजी—

जिसके बिना हर पेंडुलम

मेरे हाथ की तरह

बेकार हो जाता है ।''

श्रोताओं में कुछ उसके हाथ की ओर देख रहे हैं, कुछ उसके शब्दों का अर्थ समझने का यत्न कर रहे हैं ।

× × ×

विगत भारत-पाक युद्ध के दिनों में योगराज की ड्यूटी शरणार्थियों के एक कैंप में थी । वहीं एक दुर्घटना में उसकी दाईं बाँह की हड्डी चटख गई । अस्पताल में आया । कैंप कमाण्डेंट का पत्र साथ लाया था इसलिए अस्पताल में जगह आसानी से मिल गई । किन्तु बिस्तर पर पड़ा तो मास भर पड़ा रहा ।

जब कभी वह डाक्टर से कहता—'डाक्टर साहिब इस हाथ का क्या होगा ?' तो उत्तर मिलता—जो ईश्वर-इच्छा होगी, वही होगा । चिंता न कीजिये ।

एक दिन ऊब कर उसने कहा—डाक्टर साहिब, इस अस्पताल में मेरे इलाज का प्रवन्ध न हो तो मैं......!

"आप किसी बड़े शहर में जाना चाहते हैं तो जाइये। जेब में जो चार-पांच सौ हों, खर्च कीजिए। लेकिन इतना जान लीजिए कि जो कुछ वे लोग कर सकते हैं, वह हम भी कर सकते हैं।"

वह डाक्टर की बात समझने की कोशिश करता रहा। उसके बूढ़े बाप ने कहा --मैं तो पहले से कहता रहा हूँ बेटा! पैसे के बिना काम चलने का नहीं।

लेकिन इतने पैसे आएँ कहाँ से! बाप-बेटे के मित्रों, सम्बन्धियों से बात की गई। कुछ ने एहसान जता कर, कुछ ने मित्रता के नाते, कुछ ने सहानुभूति से कुछ न कुछ दिया और दो सौ रुपये लेकर उसका बूढ़ा बाप जब डाक्टर के पास पहुँचा तो डाक्टर ने स्पष्ट शब्दों में कहा—दो नहीं, बाबा, चार से काम होगा।

बूढ़ा जानता था—दो सौ रुपये किस कठिनाई से एकत्रित हुए हैं। इसलिए दो को चार करने का कोई साधन उसे सूझता नहीं था। उसके गिड़गिड़ाने से पसीज कर डाक्टर ने आप्रेशन का निश्चय किया। आप्रेशन हुआ, लेकिन आधा ही। दूसरा आप्रेशन बाद में किया जायेगा—यह उन्हें बता दिया गया। लगभग तीन मास बाद दूसरे दो सौ का प्रबन्ध करके जब बूढ़ा डाक्टर के पास पहुँचा तो डाक्टर के सहायक ने कहा, "इतनी देर के बाद आप्रेशन का कोई लाभ नहीं होगा। तुम लोग पैसे को प्यार करते हो, जिन्दगी चाहे बेकार हो जाए।"

बूढ़ा सहमा सहमा लौट आया और उसके बेटे का हाथ पेंडुलम की तरह लटकता रह गया।

× × × ×

रेडियो पर समाचार प्रसारित हो रहे थे—राज्य सरकार के प्रवक्ता ने कहा कि अब प्रत्येक चार हज़ार व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है । हमारी योजना है कि प्रत्येक चार सौ व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर हो ।

किन्तु योगराज सोच रहा था—

ऐसा क्यों नहीं कहा जाता कि—चार सौ रुपये पर एक डाक्टर है, शायद यह रेट और बढ़ जाए ।

उसने लटकते हाथ को कोट की जेब में रख लिया । बिना पेंडुलम की घड़ी की ओर देखकर गोष्ठी उठ गई ।

लहर लहर हर नैया नाचे

चुनाव-चुनाव-चुनाव ।
जीतेगा जी जीतेगा गाय-बछड़ा जीतेगा ।
जलेगा दीपक, होगा उजाला ।
नहीं देखना इधर-उधर,
मुहर लगाना साइकिल पर ।
हर भूखे लाचार को
हरे पेड़ की छाँह चाहिए ।

गाँव की ओर आने वाली हर पगडंडी चुनाव की बातों से भर गई । हर दीवार पर नारे लिखे गये, विज्ञापन लगाए गए, चुनाव चिह्न अंकित किए गए । विभिन्न प्रत्याशियों के समर्थक घर-घर जाकर वोट माँगने लगे ।

मंगतू जिस वट वृक्ष के नीचे गत अनेक वर्षों से बैठता चला आ रहा था, महत्त्वपूर्ण बन गया । वट वृक्ष भी एक प्रत्याशी का चुनाव चिह्न था ।

ग्राम एक नदी से घिरा हुआ था । यह नदी इस चुनाव की हलचल में एक बड़ा प्रश्न-चिह्न बन गई थी । नदी पर कोई पुल नहीं था । पिछले चुनावों के समय यहाँ एक पुल बना था किंतु एक ही वर्षा से परास्त होकर पुल के सभी चिह्न मिट गए ।

सभी प्रत्याशी जानते थे कि पुल इस गाँव की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

यदि किसी को 'पुल' ही चुनाव चिह्न मिल जाता तो उसकी विजय निश्चित हो जाती। सत्तारूढ़ दल के प्रत्याशी ने पुल बनवाने का भरसक यत्न किया किन्तु यह चुनाव लोक सभा का था, इसलिए राज्य सरकार की विशेष दिलचस्पी इस चुनाव में नहीं थी। लोग वोट मांगने वालों को कोसते हुए नदी को पैदल ही पार करने चल पड़ते।

मंगतू घाट के निकट वट वृक्ष के नीचे बैठा सिग्रेट, मिठाई, चबेना इत्यादि बेचता। थके राही उसके पास बैठ कर चुनाव की बात करते। वह प्रायः सोचता—यदि पुल बन गया तो शायद मेरी दुकान ठप्प हो जाएगी। लोग नदी पार करने के लिए किसी साथी की प्रतीक्षा में उसकी दुकान पर क्यों रुकेंगे तब! लेकिन था वह बहुत चतुर।

'तुम वोट किसे दोगे?' कोई उससे पूछता तो उसका उत्तर था—उसी को जो नदी पर पुल बँधवा दे। पुल बँधवाना तो कठिन कार्य था। हाँ इस समस्या का कुछ हल नदी में नाव चला देने से भी हो सकता था। एक प्रत्याशी को यह बात सूझी तो समय अधिक न लगा। दो ही दिनों में श्वेत रंग की नौका लहरों पर नाचने लगी। नौका यात्रियों को आर पार ले जाती—बिना पैसा लिए और प्रत्याशी के प्रचारक कहते—इसे कहते हैं लोक-सेवा। आपके वोट का अधिकारी वही है जिसका हृदय आपके दुःख देख कर रो उठा।

नौका पर लहराता प्रत्याशी का ध्वज दूसरे प्रत्याशियों के लिए चिन्ता का कारण बन गया और एक ही सप्ताह में एक

नहीं चार नौकाएँ उस छोटी-सी नदी का श्रृंगार बन गईं। श्वेत, पीली, नीली और गुलाबी रंग की कलात्मक ढंग से सजी नौकाओं पर विभिन्न प्रत्याशियों के चुनाव-चिह्न प्रदर्शित थे। प्रायः इन नौकाओं की दौड़ ठन जाती और वातावरण—जीतेगा भाई जीतेगा…… ! पिछड़ गया भई पिछड़ गया……जैसे गगनभेदी नारों से गूंज उठता।

मंगतू किसे वोट देगा ? अब उसका उत्तर बदल गया था—जिसकी नाव सबसे सुन्दर होगी उसी को मेरा वोट मिलेगा। नौकाएँ प्रतिदिन सज-संवर कर नदी के आर-पार दौड़ने लगतीं और मंगतू उन्हें देखता, आँकता रहता—कौन-सी नाव सबसे मनोहर बन पड़ी है। वह सोचता नौकाओं की यह होड़ उसी का वोट जीतने के लिए हो रही है।

समय बीतता चला गया और मतदान का दिन आ पहुँचा। सभी प्रत्याशियों के समर्थक उससे पूछते—'मंगतू, कौन-सी नाव सुन्दर लगी ?' वह मुस्करा कर कहता—सभी एक से एक बढ़कर थीं। इस पर सभी दलों वाले मंगतू का वोट प्राप्त करने के प्रयत्न करने लगे। मंगतू ने किसको वोट दिया, यह किसी को पता न चला।

चुनाव में एक प्रत्याशी जीता और बाकी हार गये। नौकाएँ घाट पर बेकार पड़ी रहतीं। उनको चलाने वाले मल्लाह चुनाव प्रचार समाप्त होते ही जैसे आए थे, चले गए। धीरे-धीरे नौकाएँ लुप्त होने लगीं। ग्रामीणों ने पुनः पैदल ही नदी को पार करना शुरू कर दिया। लेकिन एक सुबह वे यह देख कर हैरान रह गए कि गुलाबी रंग की नाव यात्रियों को पार ले जाने के लिए तैयार खड़ी थी। लोगों को ज्ञात हुआ कि यह नाव अब

मंगतू की नाव है। इस विषय में संदेह की कोई गुंजायश नहीं थी क्योंकि मंगतू ने अब अपनी दुकान नाव पर ही जमा ली। मंगतू ने यह नाव कैसे प्राप्त की इस विषय में जितने मुँह, उतनी बातें सुनने को मिलतीं—

मंगतू ने आधे दाम पर नौका खरीद ली.........वोट का आश्वासन देकर सभी से पैसे बटोरता रहा है.........सचमुच गाँव का दर्द है इसके दिल में.........इत्यादि।

मंगतू ने इस विषय में चुप्पी साध ली थी। वह प्रत्येक प्रश्न पर मुस्कराता, ईश्वर का धन्यवाद करने के लिए हाथ आकाश की ओर उठा देता। एक तथ्य जो सब पर प्रकट हो गया, वह यह कि मंगतू को गुलाबी नौका पसन्द आ गई थी और इसी नौका वाले प्रत्याशी को उसने वोट भी दिया होगा।

× × ×

मजे की बात यह कि पंचायत में बहुमत एक ऐसे दल का है जिसने नीली नौका चलाई थी। गुलाबी नाव वाले के विरुद्ध वे कुछ करना चाहते हैं। कम से कम नौका चलाने का कर तो मंगतू को देना ही पड़ेगा, ऐसा उनका विचार था। किन्तु मंगतू अब साधारण व्यक्ति नहीं रह गया है। सभी को ज्ञात है कि मत-दाताओं पर उसका प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। विधान सभा के आगामी चुनावों में मंगतू महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा क्योंकि नदी के आर-पार आने-जाने वाले उसके आभारी हैं और सम्भव है, उसी की पसन्द के प्रत्याशी को वोट दें। उधर मंगतू को एक ही चिन्ता है और वह यह कि यदि पुल बन गया तो उसकी दुकान का क्या होगा।
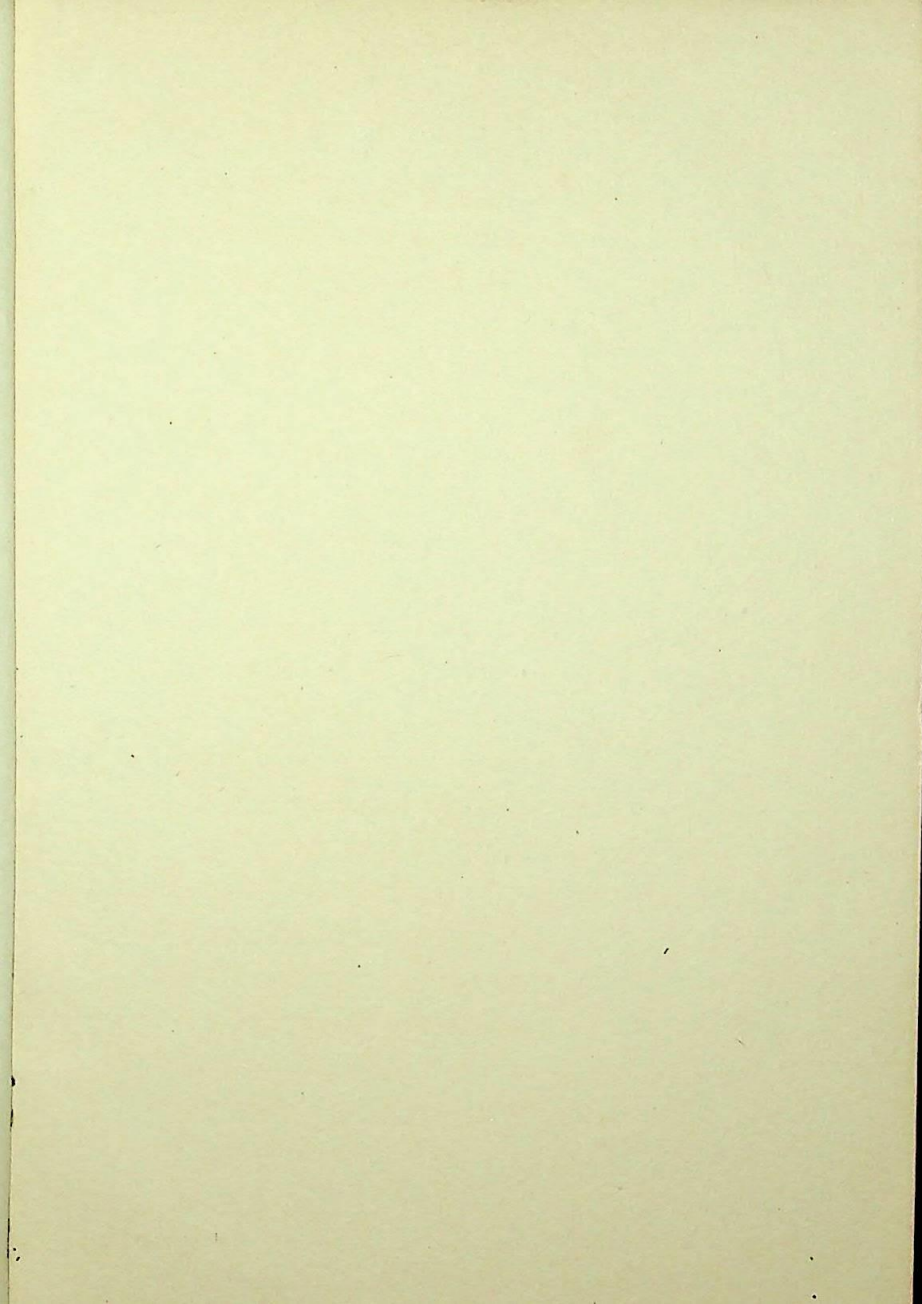
कुछ श्रेष्ठ कहानी संग्रह

		रु० पै०
गंगा की लहरें	: श्री राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित'	३ ५०
रंगमंच	: श्री नन्दकिशोर	३ ००
स्नेह दीप	: ओ० हेनरी	३ ००
दुर्गम-पथ	: 'विचित्र'	२ ००
आज की प्रतिनिधि कहानियाँ	: किरणचन्द्र शर्मा	२ ५०
हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ	: ,, ,,	२ ५०
आदर्श कहानियाँ	: भीमसेन	१ ७५
हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	: बनारसीदास	२ ००
मंजरिका	: कुमारी उमा मिश्र	२ ००
जीवन की कहानियाँ	: देवदत्त अटल	२ ५०
सात कहानियाँ	: डा० हरभजनसिंह तथा प्रो० सत्यपाल चुघ	१ ७५
गल्प रत्न	: चन्द्रकान्ता प्रभाकर	२ ७५
गल्प सुषमा	: माधवप्रसाद शर्मा	२ ५०
सुबोध कहानियाँ	: कृपाशंकर त्रिपाठी	२ ५०
आँसू और आग	: श्री व्यथितहृदय	२ ५०
चैखव की कहानियाँ	: अनुवादिका श्रीमती अ०अ०अ०	३ ००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लिमिटेड

रामनगर, नई दिल्ली-५५